चन्दामामा
सितम्बर १९८६

"कित्ते दिन दाँतों के वो अनदेखे भक्षक मेरे दाँतों में खराबी फैलाने की ताक में बैठे रहे !
हाँ, मेरी माँ ने मुझे समझाया था. अस्ल में वो 'बैक्टीरिया' हैं जो भोजन-कणों में मिलकर 'एसिड' बनाते हैं. और 'दाँतों के एनैमल' पर हमला करते हैं. फिर उसमें बारीक-बारीक छेद करके दर्दभरी दाँतों की सड़न पैदा करते हैं.
पर मुझे पता था मैं तो सुरक्षित हूँ.
सच ! मेरे साथ था...
मेरा सुपर फाइटर !
फोरहॅन्स फ्लोराइड
दाँतों की सड़न से
मेरी रक्षा-सुरक्षा यही करता है.
FOAMING Forhan's FLUORIDE
The toothpaste that tightens gums, fights cavities
मेरे सुपरफाइटर का फ्लोराइड 'दाँतों के एनैमल' को सख्त बनाता है. ताकि उनमें 'बैक्टीरिया' जमा न हो सकें. और दाँतों की सड़न पैदा न कर सकें.
मेरी माँ कित्ती अच्छी है ! मेरे स्वादवाले, झागवाले सुपरफाइटर के बारे में मुझे सब कुछ सिखा दिया !"
एक नये आकर्षक पैक में
FOAMING Forhan's FLUORIDE
फोरहॅन्स फ्लोराइड
सुपरफाइटर— मुकाबला करे जमके-दाँतों की सड़न से.
429-GM-203 HIN

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

मनुष्य को संतप्त करनेवाली समस्त पीड़ाओं में दारिद्र्य की पीड़ा अत्यन्त भयानक होती है। गुणनिधि नाम का एक बेरोज़गार युवक मन्दिर का आश्रय लेकर वहाँ के चढ़ावे से अपनी गरीबी को दूर अवश्य करता है, लेकिन सवाल उठाये जाने पर वह अपनी सच्चाई का आश्रय नहीं छोड़ता और इसी कारण उसे दारिद्र्य दूर करने का एक बेहतर रास्ता मिल जता है। इसे पढ़िये "मन्दिर का न्यासी" कहानी में।

अमर वाणी

यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव च॥

[जो मनुष्य निश्चित प्राप्त होनेवाली वस्तु का परित्याग करके अनिश्चित वस्तु के लिए प्रयत्नशील होता है, उसके लिए वह निश्चित वस्तु नष्ट हो जाती है और अनिश्चित तो पहले ही नष्ट हुई रहती है।]

वर्ष : ३९ सितम्बर १९८६ अंक : १

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

बबलूजी का मन घबराए .
खेले बिना रहा न जाए
बीमारी आड़े आ जाए,
संगी साथी पास न आए.
फिर एको एको के आए
१२ रंगबिरंगी साथी
कागज झूमा एको रंग में
बन गए तोता, बंदर, हाथी
एको हरे और एको पीले
लाल और ऑरेंज, भूरे, नीले
काले, बैंगनी, वायलेट, गुलाबी
अब तो स्केच पेन एको ही लें
एको
केच पेन रंगों से यारी, मौज-मस्ती तुम्हारी !
सिज़न राइटिंग पॉइन्ट्स प्रा. लि. १८, सुभाष रोड, विले पारले (पूर्व), बम्बई-४०० ०५७.
: ६०४०३०५, ६०४३५५६.
EKCO
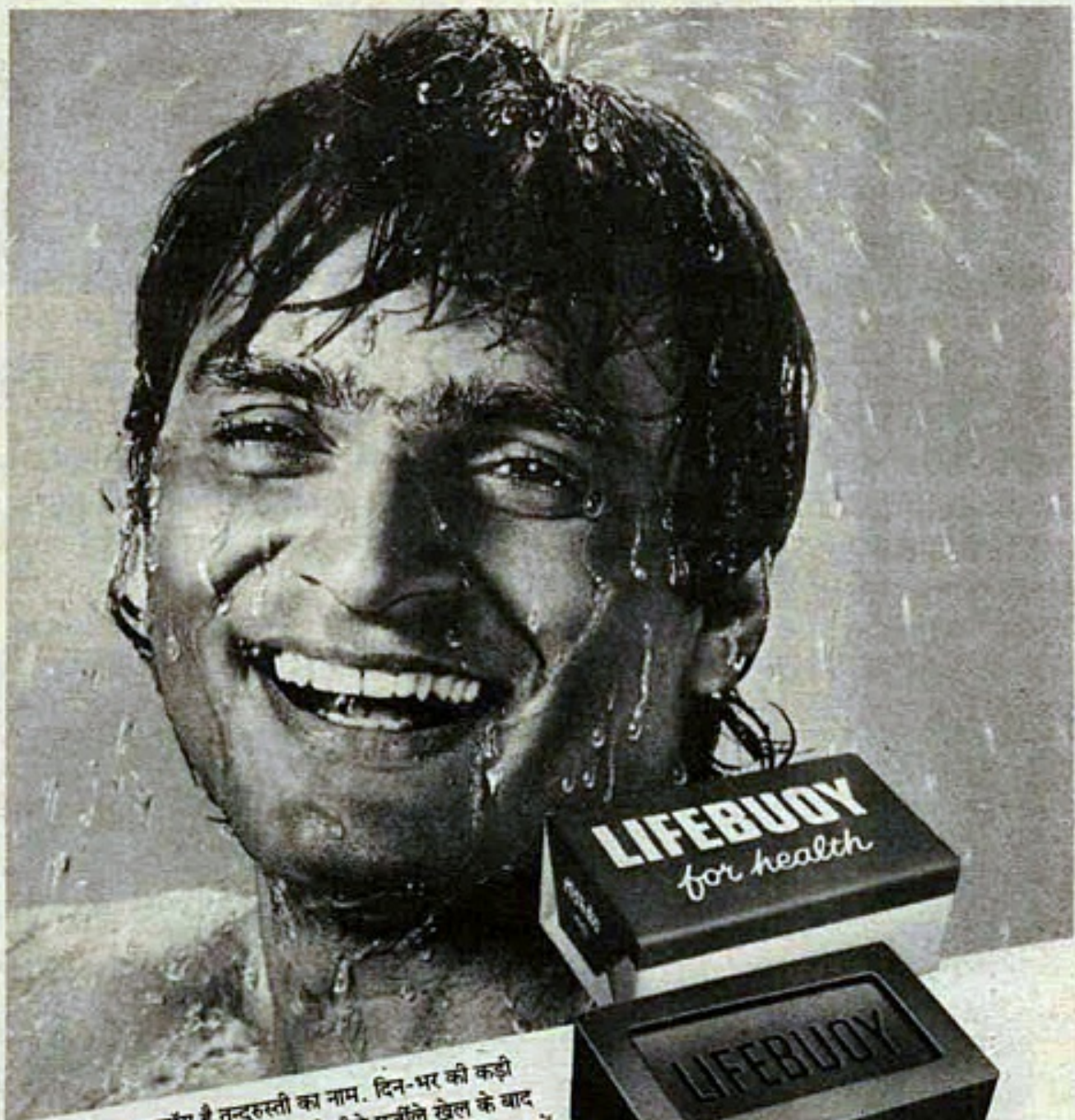
इन्दुमति

प्राचीन काल में तृणबिन्दु नाम के एक ऋषि ने दीर्घकाल तक कठोर तपस्या की। "ऋषि की तपस्या सफल हो जाने पर मेरे पद को खतरा पैदा हो जायेगा"– यह सोचकर इन्द्र ने तृणबिन्दु की तपस्या भंग करने के लिए हरिणी नाम की एक अप्सरा को भेजा। हरिणी तृणबिन्दु के सामने पहुँचकर मनमोहक हाव-भाव दिखाकर नाचने लगी और मधुर स्वर में गाने लगी। तृणबिन्दु ने कुपित होकर शाप दिया–"तुझे देवलोक का त्याग कर पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण कर आना होगा।"

हरिणी भयभीत हो गयी और उसने ऋषि से निवेदन किया कि वे क्षमादान कर अपना शाप वापस ले लें। कुछ क्षण बाद क्रोध शांत होने पर ऋषि बोले–"मानवी रूप में विचरण करते हुए जब कभी दिव्य पारिजात पुष्पों का हार तुम्हारे कंठ का स्पर्श करेगा, तुम मेरे शाप से मुक्त हो जाओगी।"

ऋषि तृणबिन्दु के शाप के कारण हरिणी का जन्म भोजराज के यहाँ हुआ। नाम मिला इन्दुमति। स्वयंवर में इन्दुमति ने अयोध्या के राजा अज का वरण किया।

कुछ काल बाद जब इन्दुमति उद्यान में विहार कर रही थी, उस समय नारदमुनि आकाश मार्ग से जा रहे थे, तब एक पारिजात पुष्पमाला उनकी वीणा से फिसलकर नीचे गिर गयी और इन्दुमति के कंठ में आ पड़ी।

इन्दुमति ने जैसे ही देवलोक के पारिजात-पुष्पों के हार का स्पर्श अपने कंठ में अनुभव किया, वह अचेत होकर गिर पड़ी और अपनी मानव-देह त्याग कर देवलोक में पहुँची।

पार्वती नाम की एक अधेड़ स्त्री घर-घर भीख माँगकर अपना गुज़ारा करती थी। एक दिन वह एक संकरी गली से निकल रही थी कि छह वर्ष का एक अनाथ बालक उसे मिला। उसका नाम अनन्त था। पार्वती बालक को अपने साथ ले गयी। पढ़ाई में उसकी रुचि देख पार्वती ने उसे पढ़ाने का निश्चय किया। भीख माँगकर उसे जो भी मिलता, वह उसी में से थोड़ी बचत कर अनन्त को पढ़ाने लगी।

अनन्त ने बीस वर्ष की अवस्था में अपनी पढ़ाई पूरी कर नौकरी प्राप्त कर ली। उसने किराये पर एक अच्छा मकान भी ले लिया। पार्वती यह सोचकर खुश हो गयी कि अब उसके कष्ट दूर हो गये हैं।

अनन्त रूप, गुण और व्यवहार में अच्छा लड़का था, इसलिए उसके लिए अच्छे घरों के रिश्ते आने लगे। अनन्त ने पार्वती की पसन्द की लड़की से विवाह किया। वधू का नाम अमला था।

अमला ससुराल में आ गयी। पार्वती कभी भिखारिन थी। इसलिए अपने पति के साथ उस औरत को खाना बनाकर परोसना अमला को अच्छा न लगा। अपने पति के दफ़्तर जाने के बाद अमला पार्वती को जली कटी सुनाती और उसका अपमान करती। पार्वती का तो जीवन ही झिड़कियों में बीता था। अनन्त की बहू से झिड़कियाँ पाकर शुरू में तो उसे बहुत कष्ट हुआ, फिर वह इसकी अभ्यस्त होगयी।

एक दिन पार्वती बीमार पड़ गयी। पार्वती के मना करने पर भी अनन्त उसके इलाज में धन खर्च करने लगा। पर अमला को यह खर्च तनिक भी नहीं भाया।

एक दिन अमला अपने पति से बोली— "अगले हफ़्ते गणपति उत्सव आ रहा है।

राधेश्याम गुप्त

इस त्यौहार के लिए एक रेशमी साड़ी खरीद दो!" पत्नी की बात सुनकर अनन्त बोला–"उत्सव-त्यौहारों की क्या कमी है? तुम तो देख ही रही हो, नानी के इलाज में काफ़ी पैसा खर्च करना पड़ रहा है।"

यह उत्तर सुनकर अमला तमक कर बोली–"एक भिखारिन के पीछे इतना धन खर्च करना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है।"

अनन्त अमला की यह बात सुनकर बोला–"तुम भविष्य में नानी के बारे में ऐसी तुच्छ बात नहीं बोलना, समझीं!"

उस दिन से अमला के मन में पार्वती के प्रति वैरभाव और भी बढ़ गया।

उस रात भोजन के बाद अमला ने स्पष्ट कह दिया–"तुम अच्छी तरह सोच-समझकर यह निर्णय कर लो कि तुम्हें वह भिखारिन चाहिए या मैं?"

अमला की बात सुनकर अनन्त गरजकर बोला–"पति के रूप में तुम्हें प्रसन्न रखना मेरा फर्ज है, पर तुम्हारा फर्ज कहाँ गया? मैं एक अनाथ बालक था। नानी ने मुझे सड़क से उठाया और मुझे इस लायक बनाया। वह मेरे लिए माँ से भी बढ़कर है। मैं अपनी जिम्मेदारी समझता हूँ। मुझे क्या करना उचित है, यह जानता हूँ। आगे से तुम कभी बकवास मत करना!"

अगले दिन सुबह ही सुबह अमला उठी और एक चिट्ठी सो रहे पति के सिरहाने छोड़कर घर से निकल गयी। उसने लिखा था कि वह अपने पीहर जा रही है।

किराये की गाड़ी लेकर अमला अपने पीहर पहुँची। बेटी को घर आया देखकर उसके पिता शंकरदास ने पूछा–"तुम अकेली आयी हो, बात क्या है?"

अमला ने सारा वृत्तान्त अपने पिता को सुना दिया, फिर आक्रोश में भरकर बोली–"पिताजी, मेरे पति तो मुझसे ज्यादा उस बूढ़ी भिखारिन को मानते हैं। मैं उस घर में अब अधिक नहीं रह सकती, इसलिए चली आयी हूँ।"

शंकरदास कुछ देर तक कुछ सोचता रहा, फिर बोला–"बेटी, तुमने अच्छा किया। जिस दिन अनन्त अपनी पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझेगा, वह भागकर आयेगा तुम्हें ले जाने के लिए।"

अपने पिता की बात सुनकर अमला का दिल एकदम हलका हो गया। पर उसके भाई विनायक ने अमला से कुशल-प्रश्न तक नहीं पूछा। इस बात से अमला को बड़ी व्यथा हुई।

इसके बाद शंकरदास कचहरी जाते हुए बोला–"जो हुआ, सो हुआ। अब तू निश्चिंत रह। मैं शाम से पहले ही घर लौटूंगा, तब विस्तार से बात करेंगे।"

लेकिन उस दिन शाम क्या, रात हो गयी, शंकरदास घर न लौटा। अमला घबरा गयी। रामदास शंकरदास के दफ़्तर में ही काम करता था, वह भागी हुई रामदास के घर गयी और अपने पिता के बारे में पूछताछ करने लगी।
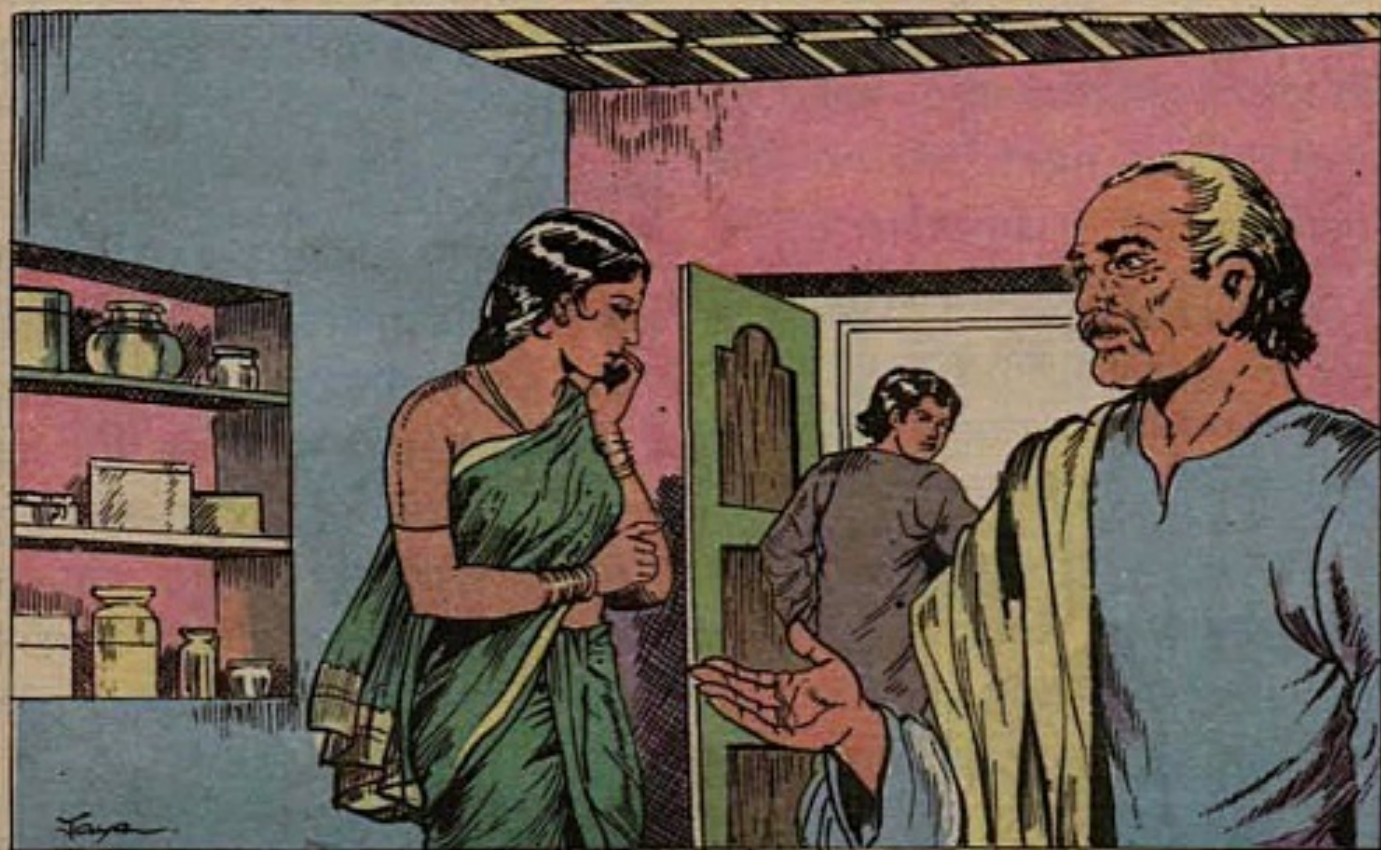
रामदास ने कुछ क्षण चुप रहकर कहा— "बेटी, मैं खुद ही तुम्हारे घर आ रहा था, बात यह है कि आज शाम शंकरदास रिश्वत लेते हुए रंगे हाथ पकड़े गये। नौकरी तो उनकी गयी ही समझो, और भी कुछ भुगतना पड़ जाये तो असंभव नहीं।"

यह जवाब सुनकर अमला आपाद मस्तक काँप उठी। रिश्वत लेने के कारण नौकरी से हाथ धोने का मतलब है परिवार की इज्जत का धूल में मिल जाना।

अमला इस तरह चितामग्न घर लौटी। उसी वक़्त पिछवाड़े में आहट हुई। अमला जब वहाँ पहुँची तो देखती क्या है कि उसके पिता कुएँ की जगत पर कोई कागज छोड़कर जा रहे हैं। अमला ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया।

"बेटी, अब मैं किसी को मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहा। मुझे अपने रास्ते जाने दो।" शंकरदास ने कहा।

"यह क्या कहते हैं, पिताजी! अन्दर आ जाइये!" अपने दुख पर नियंत्रण कर अमला बोली।

"बेटी, इस उम्र में नौकरी से हाथ धोना पड़ा। मेरी चिंता यही है कि हमारी ज़िंदगी की गाड़ी अब आगे कैसे चलेगी?" अत्यन्त व्यथित स्वर में शंकरदास ने कहा।

"पिताजी, आप व्याकुल मत होइये! आपकी नौकरी चली गयी तो क्या हुआ? भाई विनायक की नौकरी तो है। एक पुत्र के रूप में आप की देखभाल की जिम्मेदारी क्या भाई पर नहीं है?" अमला बोली।

उसी समय पिछवाड़े का किवाड़ खोलकर विनायक वहाँ आ गया और बोला— "अमला, मैं अपनी जिम्मेदारी की बात बाद में बताऊँगा। इससे पहले तुम मुझे यह बताओ कि अच्छे-भले हाथ-पैर होते हुए और प्रतिष्ठापूर्ण पद पर काम करते हुए पिताजी का रिश्वत लेना तुम्हें अच्छा प्रतीत होता है? मुझे तो नफ़रत होती है। तुम्हें घृणा नहीं होती?"

"नहीं भैया, भगवान की क़सम खाकर कहती हूँ कि पिताजी ने कुछ भी किया हो, पर मैं उनके प्रति दुर्भावना नहीं कर सकती।" अमला ने कहा।

यह उत्तर सुनकर विनायक हँस पड़ा, बोला—"रिश्वत लेने जैसा इतना नीचतापूर्ण कृत्य करने पर भी पिताजी के प्रति तुम्हारे अन्दर कोई दुर्भावना नहीं है। पर असहाय स्थिति में दूसरा कोई मार्ग न पाकर भीख माँगनेवाली पार्वती के प्रति तुम्हारे मन में घृणा का भाव है? पिताजी के इतना बड़ा अपराध करने पर भी पुत्र के रूप में उनकी देखभाल की जिम्मेदारी मुझ पर है, है न?"

"क्यों नहीं, अवश्य है!" अमला क्रोधित होकर बोली।

"तुम मुझे यह सीख दो, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। पर अनाथ बच्चे अनन्त को पार्वती ने अनेक यातनाएँ झेलकर पाला-पोसा, पढ़ा-लिखाकर एक सम्मानित व्यक्ति बनाया, तो क्या बुढ़ापे में उस औरत की देखभाल की जिम्मेदारी अनन्त की नहीं है? उस घर में तुम बहू बनकर गयी हो। तो क्या माँ से भी बढ़कर उस बूढ़ी औरत की सेवा-शुश्रूषा करना तुम्हारी जिम्मेदारी नहीं है?" विनायक ने पूछा।

अपने भाई के इस सवाल का जवाब अमला नहीं दे पायी। उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—"भैया, तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं कल सुबह अपनी ससुराल जाऊँगी। पिताजी की नौकरी छूट गयी, कोई बात नहीं, लेकिन मुझे इस बात का डर है कि कहीं उन्हें कोई सज़ा न मिल जाये।"

अमला की बात सुनकर शंकरदास हँस पड़ा और बोला—"बेटी, तू चिन्ता न कर! न मैंने रिश्वत ली है और न मेरी नौकरी ही छूटी है। तुम्हें पाठ पढ़ाने के लिए मैंने विनायक और रामदास ने मिलकर यह नाटक रचा था।"

"पिताजी, आप लोगों ने जो यह नाटक रचा, उसके कारण मुझे जीवन भर के लिए सद्बुद्धि और भले-बुरे का ज्ञान मिला है।" यह कहकर अमला घर के अन्दर चली गई।

शनिदेवता

भरतपुर में कनकदास नाम का एक गृहस्थ रहता था। एक दिन वह किसी काम से अपने पड़ोस के गाँव शिवसागर में अपने रिश्तेदारों से मिलने गया। वहाँ से लौटते समय उसे एक जंगल से गुज़रना पड़ा। तभी उसने देखा कि एक आदमी एक पोटली हाथ में लिये पतझड़ियों में लुकता-छिपता जा रहा है।

उस आदमी को घबराया हुआ देखकर कनकदास ने समझ लिया कि निश्चय ही वह कोई चोर होगा। इस विचार के आते ही वह चुपचाप एक पेड़ के पीछे छिपकर खड़ा हो गया और आदमी की गति-विधि देखने लगा। उस पोटलीवाला आदमी एक पेड़ की खोखल में पोटली सरका कर तेज़ कदमों से वहाँ से चला गया।

इस दृश्य को देखने के बाद कनकदास का विश्वास दृढ़ हो गया कि वह निश्चय ही कोई चोर है। खोखल में रखी पोटली को खुद हड़पने के ख्याल से कनकदास ने तेज़ी से उस ओर चार-पाँच क़दम बढ़ाये। उसी समय कनकदास के गाँव का ही देवीदयाल अपनी ओर आता दिखाई दिया।

कनकदास ने क्रोध भरी दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा और अपनी जगह ठिठककर खड़ा रह गया। देवीदयाल अभी उसके निकट पहुँचा ही था कि तभी एक तीसरा व्यक्ति उधर आया और खोखल से पोटली लेकर पेड़ों के पीछे भाग खड़ा हुआ।

कनकदास गहरी सांस भरकर देवीदयाल से बोला—"देवीदयाल, असली चोर जब वह पोटली पेड़ की खोखल में खिसका कर भाग रहा था, तब मैंने उसे देखा था। मैं सब की आंख बचाकर उस पोटली को हड़पना चाहता था, पर तुम शनिदेवता बनकर मेरी राह में आ गये।"

विमला शर्मा

कनकदास के मुँह से यह कड़वी बात सुनकर देवीदयाल रुआंसा चेहरा बनाकर बोला–"मैंने भी उस चोर को पेड़ की खोखल में पोटली रखते हुए देखा था। मैं पोटली को हथियाने के ख्याल से तेजी से इधर आ ही रहा था कि तुम शनि बनकर मेरे सामने आ गये। जो तीसरा आदमी पोटली लेकर भाग गया है, भाग्यदेवी ने उस पर कृपा की है। हम दोनों, वास्तव में, एक-दूसरे के लिए शनि बन गये।"

वे दोनों आपस में इस तरह बात करते हुए अपने गाँव के रास्ते पर लौट ही रहे थे कि उसी समय ब्रह्मपुर के जमींदार के दो लठैत धन की पोटली लेकर भागनेवाले उस आदमी के दोनों हाथ रस्सियों से बाँधकर ले जाते हुए सामने आ गये। उन दोनों लठैतों को कनकदास और देवीदयाल भलीभाँति पहचानते थे।

कनकदास ने अनजान बनकर ज़मींदार के सेवकों से पूछा–"क्या हुआ? यह आदमी कौन है?"

"यह चोर है। कल रात ज़मींदार साहब के घर से धन और गहने चुराकर भाग गया। हमने इसे चोरी के माल सहित रंगे हाथों पकड़ा है, फिर भी यह अपने को निर्दोष बताता है।" लठैतों ने कहा।

देवीदयाल कुछ कहने को हुआ, पर तभी रस्सियों से बंधा वह आदमी सिर हिलाकर बोला–"हुज़ूर, मेरी बात पर यक़ीन कीजिये! मैं दूर एक पेड़ पर मधुमक्खी का छत्ता

तोड़ रहा था, तभी मैंने देखा कि एक आदमी पेड़ की खोखल में एक बड़ी सी पोटली डालकर भाग गया। मैंने लालच में आकर उस पोटली को उठा लिया और भागते हुए आप लोगों के हाथों में पड़ गया। मैं क़सम खाकर कहता हूँ, मैं चोर नही हूँ।"

यह जवाब सुनकर दूसरा लठैत आपे से बाहर हो गया और डपट कर बोला–"अरे झूठे, बदमाश! मुँह बंद कर, वरना जुबान खींच लूंगा। तेरी बातों से साफ़ पता लगता है कि तेरा एक और साथी है। अगर तूने उसका पता देकर उसे पकड़वा न दिया तो तुझे तो कारागार में सड़ना ही पड़ेगा, पर इससे पहले हम तुझे धूप में खड़ा कर तेरी पीठ पर जलती चट्टान बँधवा देंगे।" यह सुनकर वह आदमी डर के मारे चुप हो गया।

जब सब लोग चले गये तो कनकदास ने देवीदयाल से कहा–"देवीदयाल, तुम मेरे मार्ग में शनिदेवता बनकर नहीं, बल्कि भाग्यदेवता बनकर आये।"

देवीदयाल ने मंद-मंद मुस्करा कर कहा–"कुछ क्षण पहले हम दोनों एक-दूसरे के लिए शनि बन गए थे, इसीलिए चोरों के रूप में उन लठैतों के हाथ पड़ने से बच गये। मेरे मन में अब धीरे-धीरे यह विश्वास पैदा हो रहा है कि शनि देवता भी किसी न किसी रूप में मनुष्य का उपकार ही करता है।"

कनकदास बोला–"यह बात सच है कि हम तीनों ने ही उस वास्तविक चोर को खोखल में पोटली डालते देखा था। छत्ता तोड़ने के लिए जो आदमी पेड़ पर चढ़ा था, अगर उसने हमें देख लिया होता तो वह भी हम दोनों को अपने मार्ग का कंटक शनिदेवता समझता।"

"चोरी किया हुआ माल उस असली चोर को तो नहीं मिला, मगर फिर भी वह भाग्यवान निकला और कारागार की सज़ा पाने से बच गया।" देवीदयाल बोला।

इसके बाद वे दोनों खुशी-खुशी बात करते हुए अपने गाँव भरतपुर पहुँचे।

[४]

[नागरिकों ने चित्रसेन से निवेदन किया कि उग्राक्ष उनके पशु और मनुष्यों को उठाकर ले जाता है। यह समाचार सुनकर चित्रसेन उग्राक्ष के क़िले में पहुँचा। उग्राक्ष ने बताया कि राज्य के पशुओं को तो अवश्य उसके सेवक उठा ले जाते हैं, लेकिन मानवों को ज्वाला द्वीप के भयंकर प्राणी उठा ले जाते हैं। वह उन्हें चित्रसेन को दिखायेगा। आगे पढ़िये...]

उग्राक्ष चित्रसेन तथा उसके साथ आये परिजनों और सैनिकों को क़िले में ले गया। सब से पहले उसने उन्हें अपने क़िले की अपार सम्पदा दिखायी। आदि से लेकर अब तक राक्षसों ने जिन विभिन्न प्रकार के आयुधों का उपयोग किया था, उन्हें और अनमोल हीरक-माणिक-मुक्ता आदि रत्नों को देखकर चित्रसेन आश्चर्य-चकित रह गया। "ओह, इतनी धनराशि! राक्षसों को इस धन से क्या प्रयोजन?" इस प्रश्न को चित्रसेन ने उग्राक्ष से पूछ ही लिया—"उग्राक्ष, तुम लोग इस धन का क्या करोगे?"

यह प्रश्न सुनकर उग्राक्ष जोर से हँस पड़ा और बोला—"भविष्य में कभी हमारी जाति भी सभ्य बन जायेगी और तुम लोगों की तरह वाणिज्य-व्यापार और खेती-बारी करना चाहेगी तो उसके लिए इस धन का

उपयोग होगा। इसके अलावा अगले अट्ठारह वर्षों बाद घटनेवाली एक प्रमुख घटना को दृष्टि में रखकर मैंने इस क़िले में सुवर्ण, और मणि माणिक़ों का संग्रह कर रखा है।"

अट्ठारह वर्ष बाद की प्रमुख घटना की चर्चा उग्राक्ष के मुँह से सुनकर चित्रसेन को अपना वचन याद आ गया। उसके मन में यह शंका हुई कि क्या उग्राक्ष सचमुच यह विश्वास करता है कि मैं अट्ठारह वर्ष बाद अपने पुत्र को उसके हाथ सौंप दूंगा। यह तो अत्यन्त क्रूर कर्म होगा। पर इस बात को इस समय उग्राक्ष के सामने प्रकट करना उचित नहीं है। न मालूम समय कैसा शक्तिशाली होता है!

चित्रसेन उग्राक्ष के क़िले की सारी विशेषताओं को घूमकर देखता रहा। इस बीच सूर्यास्त हो गया। उग्राक्ष ने अपने अतिथि चित्रसेन तथा उसके अनुचरों को बड़ी भारी दावत दी। अभी दावत चल ही रही थी कि उग्राक्ष का एक सेवक दौड़ा-दौड़ा आया और बोला–"मालिक, ज्वालाद्वीप के लोग जिन भयंकर पक्षियों पर सवार होकर आते हैं, वैसा ही एक पक्षी कुंभिनी प्रदेश में दिखाई दिया है। वहाँ के संतरियों ने आग जला ली है और इसकी सूचना देने के लिए मुझे आप के पास भेजा है।"

सेवक की बात सुनकर उग्राक्ष चौंक पड़ा और चित्रसेन से बोला–"चित्रसेन,

हमें यहाँ से तुरन्त निकल जाना चाहिए। तुम्हारे राज्य की प्रजा को जो लोग उठा ले जाते हैं, उन दुष्टों का आगमन हो गया है।"

इसके बाद शीघ्र ही सब ने अपना भोजन समाप्त किया और उग्राक्ष के पीछे चल पड़े। उग्राक्ष ने चित्रसेन तथा कुछ सशस्त्र सैनिकों को अपने साथ लिया और बाकी लोगों को दूसरी दिशा में भेज दिया।

उग्राक्ष और चित्रसेन ने क़िले को पार किया और पूर्वी दिशा के जंगल में कुछ दूर बढ़े। तभी अचानक वे ठिठक गये। क़िले की तरफ़ से पंखों की फड़फड़ाहट और चिल्लाहटों की आवाज़ें आ रही थीं। सब लोग पेड़ों की ओट हो गये और क़िले की तरफ़ देखने लगे। क़िले पर पंख फैलाकर उड़नेवाली कुछ आकृतियाँ स्पष्ट दिखाई दीं। क़िले के रक्षक राक्षस बड़ी-बड़ी मशालें हवा में ऊपर लहराकर चिल्ला रहे थे और उन आकृतियों को भगाने के लिए डर दिखा रहे थे।

"उग्राक्ष, ये विकृत आकृतियाँ भयानक आतंक की प्रतीक हैं। क्या ये आकृतियाँ तुम्हारे क़िले पर उतर कर उस पर क़ब्ज़ा करना चाहती हैं?" चित्रसेन ने पूछा।

"ज्वालाद्वीप के प्राणियों ने पहले एकाध बार ऐसा प्रयत्न किया था, पर मेरे अनुचरों ने ऊँची मशालों और लंबे भालों का उपयोग करके इन भयानक पक्षियों पर सवार उन प्राणियों में से एक को नीचे

गिरा दिया था। हमने उसे जब कोल्हू में बांधकर चार-पांच बार घुमाया, तब कहीं उसने अपना थोड़ा-सा परिचय दिया। हम उससे कुछ अधिक जान पाते, इससे पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। अब उसके साथी मुझसे बदला लेना चाहते हैं। बस, इतनी सी ही बात है। पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे लोग क़िले में उतरने का दुस्साहस कभी नहीं करेंगे।" उग्राक्ष ने उत्तर दिया।

उग्राक्ष की बात समाप्त हुई ही थी कि तभी जहां ये लोग खड़े थे, वहां के पेड़ एवं पौधे हवा के झोंकों से झूम उठे। दूसरे ही क्षण दिल दहलानेवाली भयंकर ध्वनि के साथ आसमान से दो पक्षी नीचे उतरे और उन पर से बाघचर्म धारण किये चार आदमी नीचे आ गये।

उग्राक्ष चित्रसेन तथा अपने साथियों को तुरन्त पेड़ों की ओट में ले गया। वे चारों आदमी ज़मीन पर लेट गये और चारों तरफ़ नज़र दौड़ाने लगे। जब आसपास कोई नज़र न आया तो उन्होंने उठकर परस्पर मंत्रणा की और आगे बढ़े। वे भयानक पक्षी उनके पीछे पीछे पंख फड़फड़ाते हुए चल पड़े।

पंखों के होने पर भी, वास्तव में उन्हें पक्षी नहीं कहा जा सकता था। उनकी नाक लगभग तीन फ़ुट लंबी थी; जब वे उसे ऊपर उठाते तो नीचे अन्दर की खोखल में बाघ के दाढ़ों जैसे तेज दांत दिखाई पड़ते थे। उनके जानवरों जैसी एक छोटी सी पूंछ भी थी। वे पक्षियों की भांति आगे की ओर थोड़ा झुककर चल रहे थे। उनकी ऊँचाई लगभग आठ फ़ुट थी।

उग्राक्ष नें चित्रसेन से धीरे से कहा—"हमें खतरा बाघचर्म पहननेवाले इन प्राणियों से नहीं है, बल्कि इन विचित्र पक्षियों से है। ये पक्षी न केवल इनके वाहन हैं, बल्कि इनके रक्षक भी हैं। अगर मेरे अनुचरों में से कोई इनका सामना करने की कोशिश करता है तो

ये पक्षी उस पर हमला कर देते हैं। ये बाघचर्मवाले लोग अनेक तरह की सीटियाँ बजाकर इन पक्षियों को उकसाते और संकेत देते हैं। मेरे कुछ सेवकों को इन पक्षियों ने अपनी चोंचों एवं नखों से चीर-फाड़कर मार डाला है।"

उधर पक्षियों पर से उतरे वे भयानक लोग ज़मीन से उठकर धीरे-धीरे पेड़ों के बीच चलने लगे। दोनों पक्षी अपनी चोंच उठाये पंख फड़फड़ाते उनके पीछे चल रहे थे।

"लो देखो, ये लोग पहाड़ी तलहटी में बसे उस गाँव की ओर बढ़ रहे हैं। इसका मतलब है कि तुम्हारी प्रजा में से कुछ लोग और आज गायब होनेवाले हैं।" उग्राक्ष ने कहा।

"तो क्या हमें चुपचाप देखते ही रहना होगा? क्या मेरी प्रजा को बचानें का कोई उपाय नहीं है?" चित्रसेन ने उद्वेगपूर्ण स्वर में कहा।

"नहीं तो हम लोग और कर ही क्या सकते हैं? जब तक उनके साथ वे भयानक पक्षी हैं, हम कुछ भी नहीं कर सकते। अगर ज्वालाद्वीप के ये लोग मुझे अकेले मिल जाते, इनके साथ ये पक्षी न होते तो मैं इन्हें अपने अंगूठे से दबाकर चूर कर देता।" उग्राक्ष ने आक्रोश भरे स्वर में कहा।

उग्राक्ष और चित्रसेन जिस पेड़ के नीचे खड़े थे, अचानक उसके ऊपर बैठा उल्लू इस प्रकार विकृत स्वर में बोल उठा, मानो कोई संकेत दे रहा हो। उस चिल्लाहट को सुनकर बाघचर्मवाले वे लोग झट पीछे मुड़ गये। उनके हाथों के भाले अंधेरे में चमाचम चमक उठे। भयंकर पक्षी भी चोंच खोलकर विकृत रूप में चिल्ला उठे।

"उन लोगों को शायद यह शंका हुई है कि यहाँ कोई है?" उग्राक्ष बोला। इसके बाद उसने अपने सेवकों को निकट बुलाया और उनके कान में कुछ कहा। वे लोग दो दलों में बँट कर भिन्न दिशाओं में चले

गये। दूसरे ही क्षण भयंकर पक्षी चोंच फैलाये उग्राक्ष और चित्रसेन की ओर दौड़ पड़े। उनके पीछे बाघचर्मवाले जन भाले उठाये भागे आ रहे थे।

चित्रसेन ने तलवार खींच ली। उग्राक्ष ने अपने हाथ की पाषाण-गदा को ऊपर उठाया और गरज कर आगे कूद पड़ा। उसने एक पक्षी पर उस विशाल पाषाण-गदा का प्रहार किया तो वह लुढ़क कर एक ओर को गिर पड़ा। पर दूसरा पक्षी भयानक वेग से उग्राक्ष के ऊपर कूद पड़ा और उसके कंधे पर प्रहार कर सिर पर अपनी चोंच मारने लगा। उसी समय उग्राक्ष के राक्षस सेवक चिल्लाते हुए पीछे से दो दलों में आये और बाघचर्मवाले लोगों पर टूट पड़े। उनके बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया। उसी समय मौक़ा पाकर चित्रसेन भी आगे बढ़ा और उसने अपनी तलवार से एक शत्रु के दो टुकड़े कर दिये।

इसके बाद तो भयंकर युद्ध छिड़ गया। उग्राक्ष अपने घावों की परवाह किये बिना भीषण गर्जन करता हुआ उन पक्षियों पर गदा का प्रहार करने लगा। उन पक्षियों की चोंचों की मार एवं नाखूनों के प्रहार से न केवल उग्राक्ष आहत हुआ, बल्कि उसके सेवक भी न बच सके। कुछ तो पीड़ा के कारण चीख कर नीचे गिर गये।

चित्रसेन की तलवार के वार से अभी एक ही दुश्मन नीचे गिरा था। जब वह अन्य तीनों पर टूटा तो वे भालों से आत्म रक्षा करते हुए विचित्र ढंग से सीटियाँ बजाने लगे और पीछे हटने लगे। चित्रसेन और उसके अनुचर उन्हें घेरने का प्रयत्न करने लगे, पर इसी बीच उनके मध्य वे पक्षी आ खड़े हुए। पक्षी अपने पंजों, चोंचों एवं पंखों से उन पर वार करते हुए अपने मालिकों की भाँति पीछे हटने लगे।

यह देख उग्राक्ष ने भयानक गर्जन किया और गदा घुमाते हुए आगे कूद पड़ा। ज्वालाद्वीप के तीनों आदमी पक्षियों के पंखों पर उछलकर बैठ गये। उनके मुँह से सीटी की आवाज सुनकर पक्षियों ने अपने पंख खोल दिये और उड़ने लगे। उग्राक्ष ने अपनी विशाल गदा को घुमाकर पक्षियों पर फेंक दिया। एक पक्षी ने उस गदा पर अपनी भयानक चोंच का प्रहार किया, जिससे वह धम्म से नीचे गिर पड़ी।

उग्राक्ष गदा फेंकते समय ही गदा के झटके से नीचे गिर पड़ा था। वह घायल धरती पर पड़ा हुआ था और उसके घावों से खून की धारा बह रही थी। चित्रसेन उसके पास जाकर बोला—"उग्राक्ष, घाव खतरनाक तो नहीं हैं न? जान का खतरा?"

उग्राक्ष पीड़ा से कराह उठा, फिर बोला—"वैसे प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है। लेकिन दस दिन तक खाट पर पड़े रहने की नौबत जरूर आ गयी है। पर मुझे यह तो बताओ, मेरे कितने सेवक मारे गये हैं?"

"दो जनों को उन पक्षियों ने अपनी भयानक चोंचों से चीर डाला है। चार जन घायल हुए हैं और घावों की पीड़ा से कराह रहे हैं।" चित्रसेन ने कहा।

तभी पास आये राक्षसों से उग्राक्ष ने पूछा—"दुश्मन के पक्ष का केवल एक ही आदमी मरा है न?"

"जी महाराज!" राक्षसों ने उत्तर दिया।

"छिः, कायर कहीं के! इतने सारे राक्षस वीरों के होते हुए भी बाहर से आये शत्रुओं ने हमें पराजित किया। क्या यह हमारे लिए लज्जा की बात नहीं है? धिक्कार है!" यह कहकर उग्राक्ष उठने को हुआ। उसके सेवक उसके पास आये और उन्होंने उसे कमर और कंधे पर हाथों का सहारा देकर खड़ा किया। (क्रमशः)

सच्चा फैसला

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतारा और कंधे पर डाल कर चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में स्थित बेताल ने कहा– "राजन, मुझे ऐसा लगता है कि आप किसी हठधर्मिता के कारण कुछ प्राप्त करने के लिए इतना श्रम उठा रहे हैं। पर किसी आवेश में आकर मनुष्य जो निर्णय लेता या प्रतिज्ञा करता है, वह कई बार कालान्तर में व्यर्थ साबित होती है और मनुष्य ठीक इसके विपरीत आचरण करने लगता है। इसके उदाहरण के रूप में मैं आप को दयाकर नाम के एक व्यापारी की कहानी सुनाता हूँ, श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल कहानी सुनाने लगा :

शिवपुर में रामानन्द नाम का एक व्यापारी था। उसके दो पुत्र थे, सुधाकर

बेताल कथा

और दयाकर। इनमें बड़ा सुधाकर स्वरूपवान लेकिन मन्दबुद्धि था और छोटा दयाकर अत्यन्त बुद्धिमान लेकिन कुरूप था। व्यापारी रामानन्द जब चालीस वर्ष का हुआ, तब उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। वह इस झटके को सहन नहीं कर सका और उसने चारपाई पकड़ ली। दयाकर ने ही व्यापार संभाला और उसने अपार सम्पत्ति अर्जित कर ली।

शिवपुर के ही एक और व्यापारी गुणशेखर की दो पुत्रियाँ थीं–रमा और शोभा। गुणशेखर ने रामानन्द के दोनों पुत्रों के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करने का निश्चय किया। रामानन्द को इस बात में कोई एतराज़ न हुआ। गुणशेखर की बड़ी पुत्री रमा सुधाकर के सुन्दर व्यक्तित्व पर मुग्ध हो गयी और उसने उसे अपना पति चुन लिया। लेकिन शोभा ने दयाकर की कुरूपता के कारण उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया।

शोभा के इस व्यवहार से दयाकर क्रोधित हो उठा। उसने शपथ खायी कि वह शोभा से भी कहीं अधिक सुन्दर लड़की को अपनी पत्नी बनायेगा।

इसके कुछ दिनों बाद रमा का विवाह सुधाकर के साथ हो गया। कुछ ही दिनों बाद रामानन्द की मृत्यु हो गयी।

ससुर के देहान्त के बाद एक दिन रमा दयाकर के पास पहुँची और बोली– "देवर, तुम बड़े बुद्धिमान हो। मेरे पति मन्दबुद्धि हैं। मेरी बहन शोभा ने तुम्हारे साथ विवाह करने से इनकार किया था, इस कारण शायद तुम मुझ पर भी नाराज़ होंगे। मुझे यह डर है कि हमारा भविष्य क्या होगा?"

"भाभीजी, तुम्हारा डर दूर करने के लिए मुझे क्या करना होगा?" दयाकर ने पूछा।

"तुम इस सारे धन और जमीन-जायदाद में आधा हिस्सा अपने भाई के नाम लिख दो।" रमा ने कहा।

"आधा ही क्यों? सब लिख देता हूं।" यह कहकर दयाकर ने अपने भाई के नाम सारी संपत्ति लिख दी और वह व्यापार के काम देखने लगा।

संपत्ति अपने पति के नाम लिखवा लेने के बाद रमा देवर दयाकर की उपेक्षा करने लगी। दयाकर ने समझ लिया कि संपत्ति के न होने पर मनुष्य का आदर नहीं होता। उसने घर छोड़कर जाने का संकल्प कर लिया और अपने भाई-भाभी से विदा लेने पहुंचा।

"देवर, तुम मेहरबानी करके घर से मत जाओ। समाज के लोग हम पर यह आरोप लगायेगें कि हमने तुम्हें घर से निकाल दिया है।" रमा ने कहा।

"भाभीजी, मैं अपनी शक्ति के बल पर तुम लोगों से भी अधिक संपन्न बनकर घर लौटूंगा। तुम समाज के लोगों से कह देना कि मैंने दया करके यह सारी संपत्ति तुम लोगों के लिए त्याग दी है।" यह कहकर दयाकर घर से निकल पड़ा।

दयाकर जंगल से होकर काफ़ी दूर चला, तब उसे भूख सताने लगी। वह लंबी यात्रा के कारण थक भी गया था।

उसने कुछ देर एक पेड़ की छाया में विश्राम किया, फिर उसने फलों की तलाश में चारों तरफ़ नज़र डाली। तभी उसकी नज़र कुछ दूर पर एक पेड़ की छाया में लेटे दो आदमियों पर पड़ी।

दयाकर उनकी ओर बढ़ा। उन दोनों आदमियों ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोले–"भैया, तुम तो इस वक़्त भगवान बनकर हमारे पास आये हो। डाकुओं ने हमें पीटकर बेहाल कर दिया है और वे हमारा सारा धन लूटकर ले गये हैं। हम भूख से तड़प रहे हैं। अगर तुम्हारे पास कुछ खाना हो तो हमें दे दो। हम तुम्हारे इस उपकार को कभी नहीं भूलेंगे।"

दयाकर ने एक पेड़ पर चढ़कर फल तोड़े। उन फलों को पत्ते के एक दोने में उन दोनों के सामने रखकर कहा–

"भद्रजनो, आप दोनों ये ग्रहण कीजिये। भूख और कमज़ोरी के कारण आप लोग बेहोशी की हालत में हैं! आप लोगों के खाने के बाद जो कुछ बचेगा, वह मैं ले लूंगा।"

दोनों ने झटपट सारे फल खा डाले। उन्होंने देखा कि उस युवक के लिए कुछ नहीं बचा तो वे बड़े शर्मिन्दा हुए।

दयाकर ने उन्हें समझाते हुए कहा–"मेरे शरीर में अभी ताक़त है। मैं अपने आहार की व्यवस्था कर लूंगा। अब आप लोग अपने नगर को पधारें।"

उनमें से एक पुरुष ने कहा–"मेरा नाम रत्नस्वामी है। मैं बीजपुर का एक प्रसिद्ध व्यापारी हूं। यह मेरा सेवक कुसुमाकर है। मुझसे अगर तुम्हें किसी मदद की ज़रूरत हो तो मुझे बताओ। मैं यथा संभव उसे पूरी करने की कोशिश करूंगा।"

दयाकर ने रत्नस्वामी को अपनी सारी रामकहानी कह सुनायी। रत्नस्वामी उत्साहित होकर बोला–"मेरे कोई पुत्र नहीं है। व्यापार में मदद करने के लिए कोई विश्वासपात्र सहायक भी नहीं है। तुम मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें अच्छा-खासा वेतन दूंगा।"

दयाकर ने रत्नस्वामी सेठ की बात तुरन्त स्वीकार कर ली और बीजपुर चला गया। कुसुमाकर ने दयाकर को अपने घर में आश्रय दिया और इस तरह प्रत्युपकार किया। रत्नस्वामी ने उसे बड़ा वेतन देकर उपकार का बदला चुकाया।

थोड़े ही समय में दयाकर की कुशलता ने रत्नस्वामी के व्यापार में चार चांद लगा दिये। रत्नस्वामी प्रसन्न होकर अपने लाभ का कुछ अंश दयाकर को दे दिया करता था।

कुसुमाकर के मनोरमा नाम की एक सुन्दर कन्या थी। मनोरमा दयाकर की बुद्धिमत्ता से अत्यन्त प्रभावित हुई और मन ही मन उससे विवाह करने का सपना पालने लगी।

रत्नस्वामी सेठ के भी एक पुत्री थी, नाम था राजवती। वह कुछ कुरूप ही थी। वह भी दयाकर से विवाह करना चाहती थी।

मनोरमा की समझ में नहीं आता था कि वह अपने मन का भाव दयाकर पर कैसे प्रकट करे? आखिर उसने राजवती से परामर्श करने का निश्चय किया। इधर राजवती ने भी दयाकर के बारे में मनोरमा से परामर्श करना चाहा। जब दोनों को पता लगा कि वे दोनों एक ही व्यक्ति पाने की आकांक्षा रखती हैं तो उन्होंने यह निर्णय किया कि वे दयाकर के मन की बात जानकर उसकी इच्छा को सहर्ष स्वीकार करेंगी।

मनोरमा ने सोचा—"मैं अत्यन्त रूपवती हूँ। दयाकर कुरूप है। वह मेरी जैसी रूपवती लड़की का तिरस्कार नहीं कर सकता। साथ ही, उसने इस बात की शपथ ली है कि वह अत्यन्त सुन्दर कन्या के साथ ही विवाह करेगा। इस कारण दयाकर का निर्णय मेरे पक्ष में ही होगा।"

राजवती ने अपने मन में सोचा—"मैं धनी परिवार की हूँ। दयाकर एक साधारण आदमी है। वह मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता। वह अपनी भाभी से ये वचन बोलकर आया है कि वह उन लोगों से अधिक धन का संग्रह करेगा। इस कारण निश्चय ही उसका निर्णय मेरे पक्ष में होगा।"

मनोरमा और राजवती ने अपने मन की बात अपने-अपने पिता से कह दी। यह समाचार सुनकर रत्नस्वामी और कुसुमाकर को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अलग-अलग दयाकर से अपना प्रस्ताव कह सुनाया। दयाकर ने रत्नस्वामी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और राजवती के साथ अपने विवाह का निर्णय प्रकट कर दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजन, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि दयाकर ने रूपवती मनोरमा का तिरस्कार किया और असुन्दर राजवती के

साथ विवाह करने का फ़ैसला किया। इसके पीछे क्या रहस्य हो सकता है? धन का महत्व ही न! वह इस विवाह के द्वारा अपने भाई से बढ़कर संपन्न हो सकता है, लेकिन जिस शोभा ने उसका तिरस्कार किया था, उससे अधिक सुन्दर कन्या के साथ विवाह की प्रतिज्ञा वह पूरी नहीं कर पाया। इसका क्या कारण है? अगर आप इस बात का सामाधान जानकर भी न करेंगे, तो आप का सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

विक्रमार्क ने उत्तर दिया–"दयाकर का फैसला सच्चा और ऊँचा, फ़ैसला है। राजवती के साथ विवाह में धन कारण नहीं है। यह बात आरंभ से ही प्रकट है कि दयाकर में लोभ नहीं है। उसने अपने अकर्मण्य भाई को सारी संपत्ति दे दी। जंगल में असहाय हालत में पड़े रत्नस्वामी तथा कुसुमाकर को पहले आहार देकर तब अपनी भूख मिटायी। इसी प्रकार राजवती के साथ विवाह करने का निश्चय करते समय भी उसने अपने अन्दर के नैतिक मूल्यों का परिचय दिया है। मनोरमा बड़ी रूपवती कन्या है। उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर कोई भी संपन्न व्यक्ति उसके साथ अवश्य ही विवाह कर लेगा। राजवती असुन्दर है। उससे वही प्रेम कर सकता है, जो केवल धन को महत्व देगा। अगर वह भी इस कुरूपा कन्या का तिरस्कार कर देता है तो फिर उसके लिए योग्य पति मिलना असंभव है। अब रही रूपवती कन्या के साथ विवाह करने की उसकी प्रतिज्ञा, सो वह एक आवेशपूर्ण क्षण का निर्णय था। वह उस निर्णय के लिए अपने इस क्षण के धर्म को नहीं त्याग सकता। नीति और धर्म उसके चरित्र में हैं। वह इन्हीं को आधार मानकर तुरन्त राजवती के पक्ष में अपना निर्णय सुना देता है।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

उपाय

ताशकंद नगर में मीरकमल नाम का एक व्यापारी रहा करता था। मीरकमल सप्ताह में छह दिन .व्यापार के काम से बाहर रहा करता था और केवल बुधवार का दिन ही घर पर बिताता था। उसकी पत्नी जमीरा ताशकंद नगर में इधर-उधर चक्कर लगाया करती थी और माँगने पर उसे जो मिल जाता, उससे अपना काम चलाती थी। धन खर्च किये बिना अपना गुज़ारा हो जाये, इसी में ये पति-पत्नी अपना भला समझते थे। सन्तान तो कोई थी नहीं।

एक दिन मीरकमल एक छोटी सी भेड़ ख़रीद लाया। भेड़ मरियल-सी थी, इसलिए कम दाम में मिल गयी।

मीरकमल घर से चला जाता, पर जमीरा को भेड़ के कारण बड़ी परेशानी हो गयी। भेड़ दिन भर चिल्लाती रहती। उसने आस पास की सारी हरियाली को चर लिया और घर को मींगनी से भर दिया। अगले बुधवार को मीरकमल जब घर लौटा, तो जमीरा आँखों में आँसू भर कर बोली—"यह भेड़ तुम मेरी जान लेने के लिए ख़रीद कर लाये हो? या तो तुम इसे बेच दो, वरना मैं अपने पीहर चली जाती हूँ!"

"जमीरा, तुम जल्दी मत करो! मैं इस भेड़ की कोई न कोई व्यवस्था करता हूँ।" मीरकमल ने अपनी पत्नी से कहा।

उसी दिन मीरकमल अपनी माता की समाधि पर प्रार्थना करने के लिए कब्रिस्तान में गया। वहाँ ख़ूब घास उगी थी और चारों तरफ़ हरियाली ही हरियाली थी। मीरकमल ने झटपट अपनी प्रार्थना पूरी की और यह सोचकर घर की तरफ़ चल पड़ा कि उसकी भेड़ के लिए इस कब्रिस्तान से बढ़कर ज्यादा ख़ुशहाल स्थान और कोई नहीं हो सकता।

उजबेक की लोककथा

मीरकमल मिनटों में ही घर पहुँच गया। भेड़ लेकर कब्रिस्तान के संरक्षक के पास जाकर बोला–"मैं तो अब बुड्ढा होने को आया। मेरे कोई संतान भी नही है। जब मौत आयेगी तो तुम्हीं मुझे दफ़नाने का काम करोगे। मेरे क्रिया-करम के भुगतान के लिए तुम्हें अपनी यह भेड़ अभी से सौंप देता हूँ।"

कब्रिस्तान के संरक्षक ज़फर ने मीरकमल की यह बात सहज ही स्वीकार कर ली।

इसके दो माह बाद एक बुधवार को मीरकमल कब्रिस्तान में आया और अपनी प्रार्थना समाप्त करके अपनी भेड़ को वह पहचान नहीं पाया। वह ख़ूब मोटी हो गयी थी।

इतनी वज़नी भेड़ को दान करने से बढ़कर कोई बेवकूफ़ी नहीं हो सकती। मीरकमल ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि इस भेड़ को तो वापस प्राप्त करना है।

इसके बाद मीरकमल कब्रिस्तान के संरक्षक के पास गया। फिर बोला–"भाईजान, मैं तो लुट गया हूँ। मैंने पास के गाँव में एक बीमार लड़के को दवा दी तो वह उसे उलटी पड़ गयी और वह मर गया। इस कारण मुझे ताशकंद नगर से निर्वासन का दंड मिला है। भाई जान, आप जल्दी से मेरे साथ चलने को तैयार हो जाइये!"

"कहाँ के लिए तैयार हो जाऊँ?" ज़फ़र ने पूछा।

"कहाँ क्या? मेरे साथ चलने के लिए! तुमने मुझे वचन दिया है न कि तुम मुझे मेरी मृत्यु के बाद दफ़नाओगे। इसीलिए मैंने तुम्हें भेड़ दी थी। मैं जहाँ भी मरूँगा, तुम्हीं तो मुझे दफ़नाओगे।" मीरकमल ने जवाब दिया।

"तुम्हें जहाँ मन हो, वहाँ जाकर मरो! अपनी भेड़ को भी ले जाओ और तुम और तुम्हारी भेड़ एक साथ किसी नदी में डूब कर मर जाओ।" इतना कहकर ज़फ़र ने झड़ाक से द्वार बंद कर लिये।

मीरकमल भेड़ को लेकर ख़ुशी-ख़ुशी अपने घर चला गया।
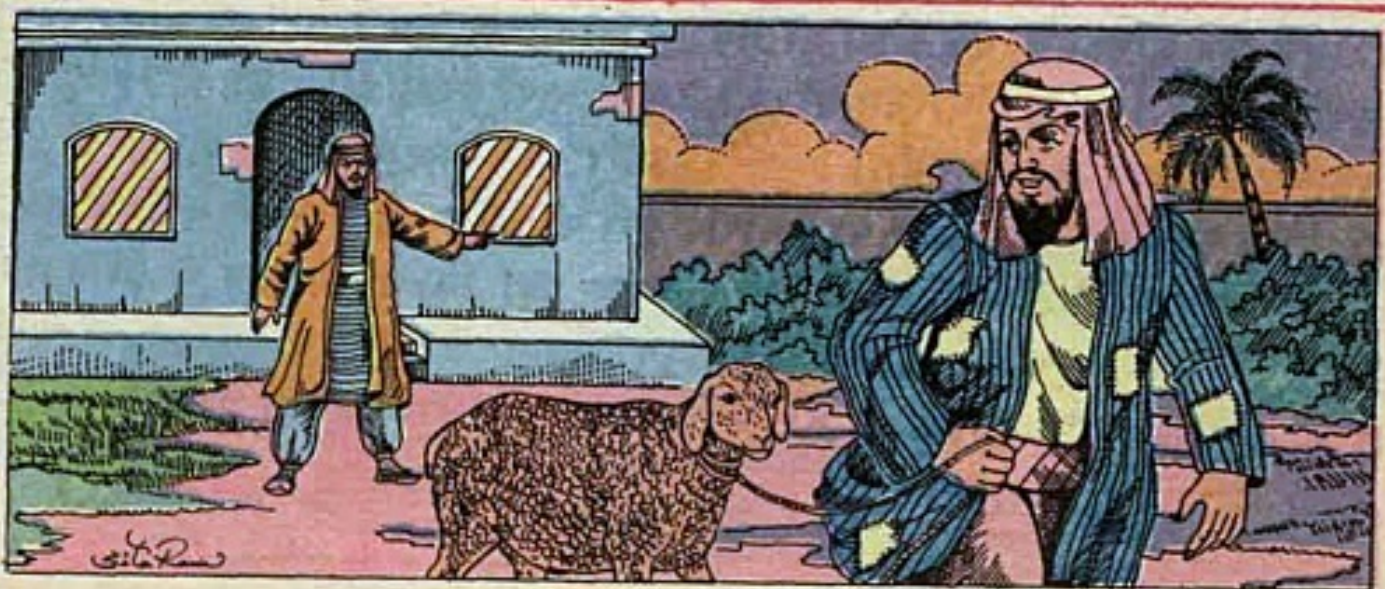
हमारे मन्दिर

खजुराहो

हजारों वर्ष पूर्व विन्ध्याचल की पश्चिम दिशा में एक घाटी थी। वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता देखते ही बनती थी। पूर्णिमा की एक रात एक ब्राह्मण-कन्या उस घाटी के सरोवर में स्नान करने गयी।

उस घाटी के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा प्रशांत वातावरण पर मुग्ध होकर चन्द्रमा ने मानव रूप धारण किया और वहाँ के पहाड़ी शिखर पर उतर कर परिसर के सौन्दर्य का रसपान करते हुए टहलने लगा।

तभी वह अद्‌भुत सुन्दरी ब्राह्मण कन्या सरोवर से बाहर निकली और समीप के खजूर-वृक्ष के नीचे आ गयी। चन्द्रमा ने पास जाकर उस रूपसी युवती को निहारा। जैसे जैसे वह उसके रूप को निहारता, उसका आनन्द और विस्मय बढ़ता जाता। तब से चन्द्रमा हर रात नीचे उतरता और सरोवर में स्नान करने के लिए आयी उस कन्या को देखता।

एक दिन वह कन्या खजूर-वृक्ष के नीचे खड़ी थी कि युवक वेशधारी चन्द्रमा ने उससे वार्तालाप किया। अब तो दोनों हर रात बातचीत करते। कुछ दिन बाद दोनों ने गन्धर्व-विधि से विवाह किया और सुखपूर्वक अपने दिन बिताये।

देववंशी चन्द्रमा चिरकाल तक मानव रूप में नहीं रह सकता था। अब उसके देवलोक में जाने का समय निकट आया। चन्द्रमा ने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा–"मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होनेवाला पुत्र एक महान वंश का मूलपुरुष बनेगा और तुम्हारे सुख का कारण होगा।" यह कहकर चन्द्रमा अपने लोक में चला गया।

चन्द्रमा की पत्नी ने एक बालक को जन्म दिया। वह बालक अत्यन्त रूपवान, मेधावी और सब के लिए सुख का कारण था। अपने बल-पराक्रम का परिचय देते हुए वह बड़ा होने लगा और उस प्रदेश का नेता बन गया।

इसके कुछ वर्ष बाद वह युवक उस प्रदेश का राजा बन गया। वह अत्यन्त धार्मिक, न्यायप्रिय और कुशल प्रशासक था। चन्द्रमा के द्वारा उसका वंश प्रारंभ हो गया था, इस कारण उसका वंश चंदेल वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चन्द्रमा और वह ब्राह्मण-कन्या, जो इस राजा के पिता-माता थे, सर्वप्रथम एक खजूर वृक्ष के नीचे मिले थे। उनकी स्मृति में राजा एक नगर निर्मित कर गया और उसके सिंहद्वार पर सोने से बने दो खजूर-वृक्षों को गड़वा दिया। इसी कारण वह नगर खजुराहो नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुछ ही समय में खजुराहो एक संपन्न नगर के रूप में विख्यात हो गया। विश्व के कोने-कोने से व्यापारी उस नगर में आने लगे। अनेक वंशों के राजाओं ने वहाँ अनेक मन्दिर बनवाये। उनमें से पच्चीस मन्दिर आज भी ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं।
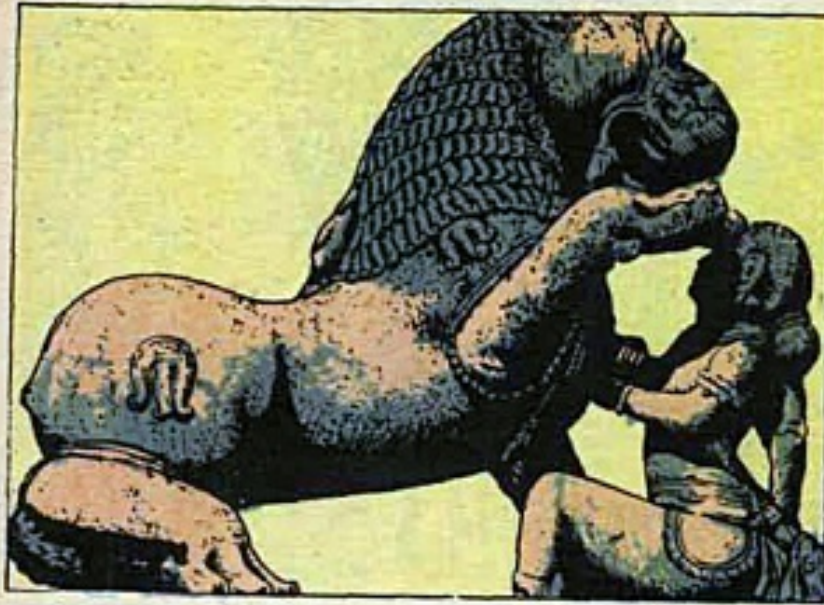
दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में खजुराहो के शासक चन्देल वंशी राजाओं ने स्वयं भी वहाँ अनेक मन्दिर बनवाये। एक विलक्षण सिंहाकृतिवाली प्रतिमा खजुराहो में चन्देल राजवंश के प्रतीक-चिन्ह के रूप में सुरक्षित है।

खजुराहो के मन्दिरों में कान्दरीय महादेव का मन्दिर सब से बड़ा है। तीस मीटर की ऊँचाईवाले इस मन्दिर में जीवन के अनेक रूपों को प्रतिबिम्बित करनेवाले असंख्य अद्‌भुत शिल्प आज भी नित नवीन रूप का परिचय दे रहे हैं।

खजुराहो में प्रति वर्ष भारी पैमाने पर नाटकोत्सवों का आयोजन होता है। पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व का यह क्षेत्र आज भी सांस्कृतिक कार्यकलापों का प्रमुख केन्द्र है।

मन्दिर का न्यासी

वेल्लुपुर गाँव में गुणनिधि नाम का एक बेरोज़गार युवक था। वह अत्यन्त गरीब था। अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद उसने कई जगह नौकरी पाने की कोशिश की, लेकिन उसे कहीं नौकरी नहीं मिली।

वेल्लुपुर गाँव के छोर पर ही एक उजड़ा हुआ मन्दिर था। जब गुणनिधि बहुत निराश होता तो वह अपनी सुध-बुध भूल कर मन्दिर के सामने के बड़े पीपल के नीचे बैठ जाता था। अगर धूप तेज़ होती या बारिश हो रही होती तो वह मन्दिर के अन्दर जाकर बैठ जाता था।

मन्दिर के अन्दर कहीं मकड़े के जाले थे तो कहीं धूल जमी थी और जहाँ-तहाँ कंकड़ पत्थर बिखरे पड़े थे। गुणनिधि ने अपने बैठने के लिए कंकड़-पत्थरों को साफ़ किया और झाड़-पोंछकर मन्दिर को एकदम चमका दिया। धीरे-धीरे मन्दिर ही उसका आवास बन गया।

वेल्लुपुर के लोग चिट्ठियाँ पढ़वाने और लिखवाने के लिए अक्सर उसके पास आ जाते थे। मन्दिर को साफ़-सुथरा देख उनका हृदय प्रसन्न हो जाता। वे मन्दिर में प्रतिष्ठित देवी को प्रणाम करते और अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेंट भी चढ़ा जाते थे। धीरे-धीरे गुणनिधि उन रुपयों-पैसों से अपने परिवार का खर्च चलाने लगा।

एक बार पड़ोसी गाँव का एक साहूकार अपने व्यापार के काम से शहर जा रहा था। रास्ते में मन्दिर देखकर वह उसके अन्दर गया। देवी की प्रतिमा के सामने हाथ जोड़कर उसने मनौती मानी—"माताजी, अगर मुझे व्यापार में अधिक लाभ हुआ तो मैं इस मन्दिर की दीवारों की मरम्मत कर इसमें सफ़ेदी करवाऊँगा।"

साहूकार को अपने व्यापार में इतना लाभ हुआ, जो उसे आज तक नहीं हुआ था। उसने अपनी मनौती के अनुसार मन्दिर की मरम्मत करायी और श्रद्धा से भेंट-अर्पण भी किया। इसके बाद सब जगह उसने इस बात का प्रचार किया कि उस मन्दिर की देवी महिमाशाली है और भक्तों की मुराद पूरी करती है। क्रमशः मन्दिर में आनेवाले भक्तों की संख्या बढ़ गयी और भेंट-अर्पण भी अधिक होने लगा। गुणनिधि उस धन को अपने खान-पान, वस्त्रों और सुखपूर्वक रहने-सहने के साधनों में खर्च करते हुए अपने दिन बिताने लगा। कुछ दिनों बाद गाँववालों के मन में सन्देह जागा और वे गुणनिधि की गतिविधियों पर निगरानी रखने लगे। उन्होंने देखा कि गुणनिधि न तो कभी देवी की पूजा-अर्चना करता है और न पर्व के पवित्र दिनों में व्रत उपवास ही करता है।

वेल्लुपुर गाँव के बुजुर्गों ने यह समाचार मुखिया को सुनाया। गुणनिधि पर आरोप लगाते हुए उन लोगों ने मुखिया से कहा– "गुणनिधि मन्दिर का न्यासी बन बैठा है, जब कि उसमें श्रद्धा-भक्ति का लेश भी नहीं है। उसने एक तरह से धर्म की आड़ में धर्म-द्रोह किया है। इस अपराध के लिए उसे उचित दंड मिलना चाहिए।"

मुखिया ने सारी बातचीत शांति से सुनी, पर इस समस्या को कैसे सुलझाया जाये, यह उसकी समझ में जरा भी नहीं आया। अगर मन्दिर का न्यासी नास्तिक तो इस अपराध का क्या दंड हो? मुखिया ने विचार के लिए कुछ समय माँगा।

उन्हीं दिनों उस देश के राजा रविवर्मा देशाटन करते हुए वेल्लुपुर में पधारे। मुखिया ने अपनी समस्या राजा के सामने रख दी।

राजा रविवर्मा ने गुणनिधि को बुलाकर पूछा–" तुम एक मन्दिर के न्यासी हो, पर तुमने नास्तिक रहकर देवी के प्रति अक्षम्य अपराध किया है। इस आरोप का उत्तर दो!"

"महाराज, मुझे क्षमा करें ! मैंने कभी किसी से यह नहीं कहा कि मैं मन्दिर का न्यासी हूँ। मैं बेरोज़गार था। रोटी के लाले पड़ रहे थे। उन दिनों मैं इस मन्दिर में आया करता था। यहाँ कुछ समय बिताने के लिए मैंने इस उजाड़ पड़ी जगह को साफ़-सुथरा किया। भक्त लोग यहाँ आने लगे और देवी की प्रतिमा के सामने भेटें चढ़ाने लगे। मैं निर्धन था, इसलिए भेटों में आया वह धन मैं अपने भरण-पोषण में खर्च करने लगा। देवी की प्रतिमा को प्रणाम न करना और पर्व-त्यौहार के दिनों में उपवास न करना अगर नास्तिकता है तो मुझे मानना पड़ेगा कि मैं एक नास्तिक हूँ।" गुणनिधि ने उत्तर दिया।

"तुम एक मन्दिर के न्यासी के रूप में व्यवहार करते हो और अपने को एक नास्तिक भी स्वीकार करते हो। इसलिए तुम्हीं बता दो, तुम्हें किस प्रकार का दंड देना उचित होगा?" राजा ने पूछा।

"महाराज, इस गाँव के रामधन को आप जो दंड देना निश्चय करेंगे, ठीक वही दंड मुझे भी मिलना चाहिए।" गुणनिधि ने उत्तर दिया।

गुणनिधि ने आगे कहा–"रामधन तम्बाकू का एक बहुत बड़ा व्यापारी है। वह मजदूरों से प्रतिदिन सैकड़ों चुरुट बनवाता और बेचता है।"

"चुरुट बेचना अपराध नहीं है।" राजा ने कहा।

"महाराज, वास्तव में बात यह है कि रामधन चुरुट केवल बेचता है, पर वह स्वयं एक भी चुरुट नहीं पीता। उलटे उससे कोई चुरुट माँगे तो कह देता है– "चुरुट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।" गुणनिधि ने जवाब दिया।

यह उत्तर सुनकर राजा की भौंहें चढ़ गयीं। पर दूसरे ही क्षण वे सोचकर हँस पड़े और बोले–"मैं तुम्हारे तर्क को समझ गया। रामधन तम्बाकू का व्यापारी है, फिर भी चुरुट पीना हानिकारक बताता है। इसलिए उसकी ईमानदारी की दाद देनी चाहिए। तुम भी ईमानदार हो! तुमने कपट-भक्ति का अभिनय किये बिना अपने मन के भावों को साहसपूर्वक प्रकट किया है। पर तुम यह बात नहीं जानते कि देवताओं के प्रति भक्ति मनुष्य के भीतर कितना बड़ा आत्मविश्वास और सहनशीलता का गुण प्रदान करती है। तुम जिस देवी पर विश्वास नहीं करते, उसी देवी को समर्पित भेंट-उपहारों द्वारा तुम अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करते रहे, यह बात असत्य नहीं है न?"

"महाराज, यह बात पूर्ण सत्य है।" गुणनिधि ने स्वीकार किया।

"सुनो, आज से तुम इस मन्दिर के न्यासी नहीं हो, यही दंड मैं तुम्हें दे रहा हूँ।" राजा ने कहा।

"महाराज, मैं गरीब हूँ। अगर मैं फिर से बेरोजगार बन गया तो मेरी जीविका कैसे चलेगी? मुझे फिर किसी उजाड़ मन्दिर में शरण लेनी होगी!" गुणनिधि ने दीन स्वर में कहा।

गुणनिधि का उत्तर सुनकर राजा हँस पड़े और बोले–"ऐसी स्थित में तुम्हारा इतिहास फिर इसी तरह शुरू हो जायेगा। पर जाने दो, तुम बेरोजगारी की चिन्ता मत करो और राजधानी स्वर्णपुर में चले आओ। मैं तुम्हें कोई न कोई नौकरी दे दूँगा।"

यह सुनकर गुणनिधि के आनन्द की कोई सीमा न रही। उसने श्रद्धाभाव से नतमस्तक हो राजा को प्रणाम किया।

उत्तर रामायण

श्रीरामचन्द्र राक्षस-वंश का संहार कर, राज्य विभीषण को देकर अयोध्या लौट आये। राम राजा बने और उन्होंने शासन की बागडोर संभाली।

एक दिन अगस्त्य तथा अन्य अनेक मुनि अयोध्या आये और उन्होंने द्वारपाल के द्वारा राम को अपने आगमन की सूचना दी। श्रीराम ने तत्काल उन्हें भवन में निमंत्रित किया। अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया और फिर उनके योग्य आसन प्रदान कर उनका कुशल-क्षेम पूछा।

सब मुनियों ने राम को राजा रूप में देखकर अपना हर्ष प्रकट किया और राम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वार्तालाप के प्रसंग में मुनियों ने बताया कि श्रीराम के द्वारा रावण का संहार कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं है। उनके हाथों से अनेक महान राक्षस वीरों का संहार हुआ, ठीक है, पर लक्ष्मण के हाथों से मेघनाथ जैसे अजेय वीर योद्धा का वध अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

मुनियों के इस कथन से राम को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मुनियों ने उन्हें बताया कि रावण, कुंभकर्ण, महोदर, प्रहस्त, देवान्तक, नरान्तक जैसे राक्षसों से भी मेघनाथ अधिक पराक्रमी था, तो राम ने मेघनाथ के बारे में अधिक जानने की इच्छा प्रकट की।

मुनि अगस्त्य ने रामचन्द्र को पुलस्त्य-वंश का पूरा वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया:

१. पुलस्त्य वंश का वर्णन

कृतयुग में ब्रह्मा के मानस-पुत्र तथा द्वितीय ब्रह्मा कहलाने वाले पुलस्त्य ने एक बार तप करने का निश्चय किया। वह मेरुपर्वत के प्रदेश में बने तृणबिन्दु के आश्रम के निकट पहुँचा और तपस्या करने लगा। जब वह तपोलीन होता, तब वहाँ देव, नाग जाति की तथा ऋषियों की कन्याएँ आकर नाचतीं, गातीं और उसके तप में विघ्न उपस्थित करतीं। पुलस्त्य क्रुद्ध हो उठा, उसने शाप दिया—"जो कन्या उसके सामने आयेगी, वह गर्भवती हो जायेगी।"

यह शाप सुनकर सारी कन्याएँ भयभीत हो गयीं और उन्होंने उसके आश्रम में आना बंद कर दिया। इसके बाद पुलस्त्य का तप निर्विघ्न चलने लगा।

तृणबिन्दु की पुत्री को पुलस्त्य के शाप का ज्ञान नहीं था। वह एक दिन साधारण भाव से आश्रम में आयी और अपनी सखियों की खोज करने लगी। जब उसे अपनी एक भी सखी के दर्शन नहीं हुए, तब वह उस निषेध-भूमि में चली गयी, जहाँ पुलस्त्य वेदाध्ययन और वेदपाठ कर रहा था। पुलस्त्य के दर्शन मात्र से उस कन्या के अन्दर गर्भ के चिह्न उत्पन्न हो गये और उसका सारा शरीर पीला पड़ गया।

तृणबिन्दु की कन्या अपने भीतर हुए इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण आश्चर्य-विमूढ़ हो गयी और अपने पिता के पास जाकर बोली—"पिताजी, देखिये, मेरा शरीर कैसे बदल गया है। मैं अपनी सखियों की खोज में पुलस्त्य के आश्रम में गयी थी, तभी मेरे भीतर यह परिवर्तन हो गया है। मैं इसका कारण नहीं जानती, मुझे तो डर लगता है।"

तृणबिन्दु ने भाँप लिया कि पुलस्त्य के शाप के कारण उसकी पुत्री गर्भवती हो गयी है। वह अपनी कन्या को लेकर पुलस्त्य के पास पहुँचा और विनम्र स्वर में बोला—"तपस्वी, यह कन्या मेरी बेटी

है, गुणवती है। आप की खोज में यहाँ आ पहुँची है। आप इसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर इसकी सेवाएँ प्राप्त कर इसे कृतार्थ कीजिये!"

पुलस्त्य ने तृणबिन्दु की बात मान ली। पुलस्त्य अपनी पत्नी के शील, स्वभाव और चरित्र पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा-"तुम बड़ी सुयोग्य नारी हो! तुम्हारे गर्भ से मेरी समता करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। मेरे वेदाध्ययन करते समय तुम यहाँ आयी थी और तुमने वेदपाठ सुनते हुए गर्भ धारण किया है, इसलिए तुम्हारा पुत्र विश्रवसु नाम से विख्यात होगा। मेरा पुत्र होने कारण वह पौलस्त्य कहकर पुकारा जायेगा।"

कुछ समय बाद विश्रवसु का जन्म हुआ। इस बालक में सत्य, शील, शुचिता और शान्त गुण आरंभ से ही थे। उसकी वय के साथ उसके गुणों की प्रसिद्धि बढ़ती गयी। विश्रवसु की प्रशंसा सुनकर भरद्वाज मुनि अपनी कन्या देवपर्णि को लेकर वहाँ आये और विश्रवसु की स्वीकृति पा उसका विवाह विश्रवसु से संपन्न कर दिया।

विश्रवसु ने देवपर्णि के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। कुछ समय बाद देवपर्णि के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस शिशु के जन्म लेते ही ब्रह्मा स्वयं वहाँ पधारे। उन्होंने उसे धनाधिपति होने का आशीर्वाद दिया और उसे वैश्रवण नाम देकर वहाँ से चले गये।

वैश्रवण को बचपन से ही तपस्या के प्रति लगाव था। वह एक महारण्य में चला गया और केवल जल और वायु को अपना आहार बना, ब्रह्मा को लक्ष्य कर तीन हज़ार वर्षों तक कठिन तपस्या करता रहा। प्रसन्न होकर ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के साथ प्रत्यक्ष हुए और वैश्रवण से पूछा-"वत्स, मैं तुम्हारी तपस्या पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। कोई वर माँगो!"

"पितामह, मुझे जगत पर शासन का अधिकार और समस्त धन-संपदाओं पर आधिपत्य चाहिए।" वैश्रवण ने उत्तर दिया।

"मैं इन्द्र, यम और वरुण के अलावा एक चौथे लोकपाल की सृष्टि करना चाहता था। तुम चौथे लोकपाल बनकर समस्त निधियों के अधिपति बन जाओ। सूर्य के प्रकाश से ज्योतिर्मय यह पुष्पक नाम का विमान स्वीकार करो! तुम इस पर सर्वत्र भ्रमण करते हुए देवयोनि को प्राप्त करो!" यह वरदान देकर ब्रह्मा चले गये।

ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के बाद वैश्रवण अपने पिता के आश्रम में पहुँचा और विश्रवसु से बोला—"पिताजी, ब्रह्मा ने मुझे वर तो दे दिये, पर उन्होंने मेरे निवास-स्थान का निर्देश नहीं किया। आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये, जहाँ मैं अन्य किसी को भी कष्ट पहुँचाये बिना सुखपूर्वक रह सकूँ।"

अपने पुत्र की तपस्या को सफल देख विश्रवसु बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"पुत्र, दक्षिणी समुद्र के तट पर त्रिकूट नाम का पर्वत है। उसके शिखर पर विश्वकर्मा ने इन्द्र की अमरावती नगरी के समान लंका नाम की एक सुवर्ण नगरी का निर्माण किया है। उसकी रचना अद्भुत है। उसके चारों ओर सुवर्ण के ही प्राकार और परिखाएँ हैं। नगर के द्वारों पर वैदूर्यमणि के तोरण हैं। यह नगरी पहले
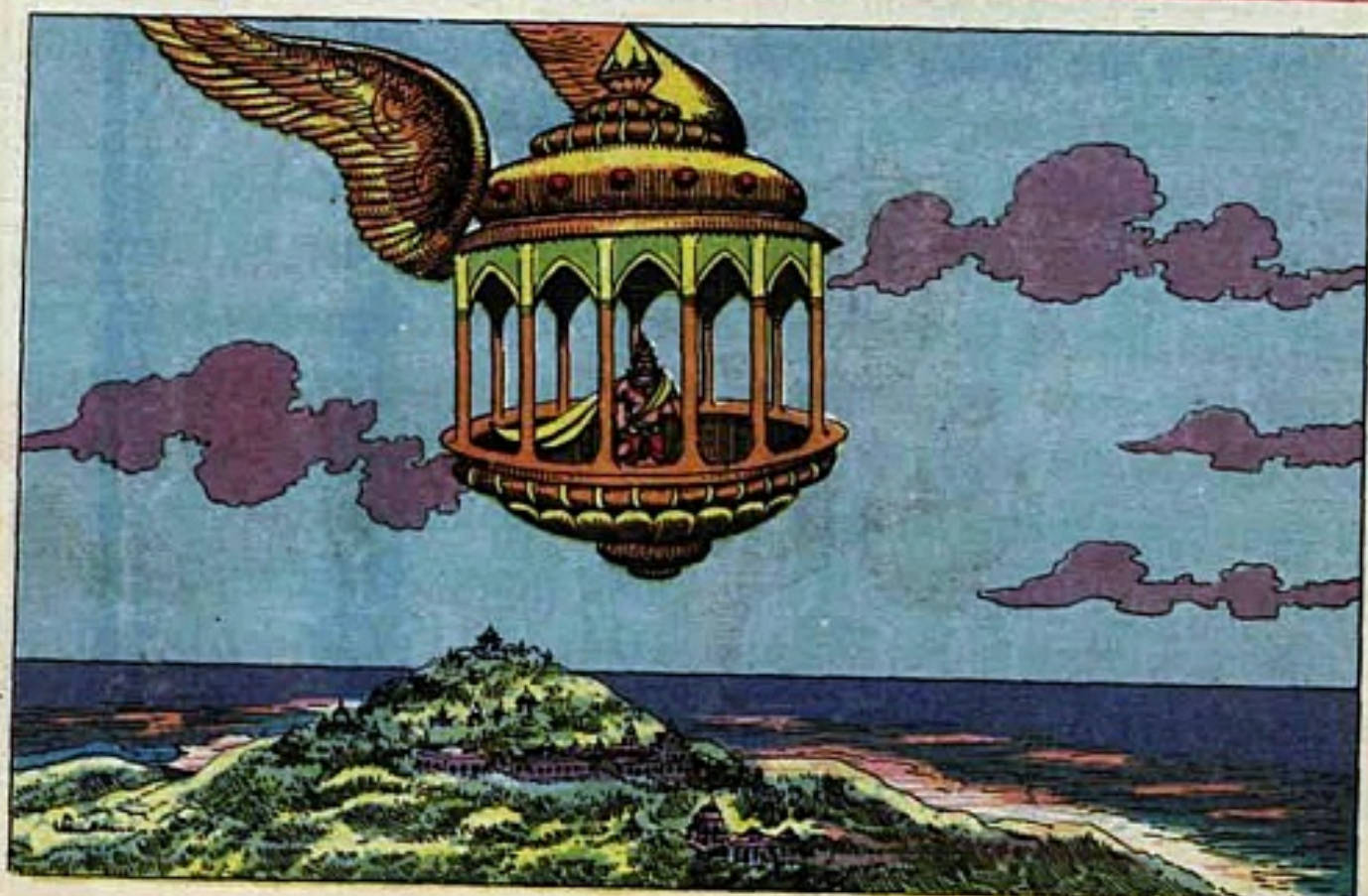
राक्षस जाति को लक्ष्य में रख निर्मित की गयी थी। किन्तु, भगवान विष्णु के भय से राक्षस इस नगरी को छोड़कर पाताल में चले गये हैं। इस समय वह एकदम सूनी पड़ी है। उसका कोई राजा नहीं है। यदि इस लंका नगरी को तुम अपना आवास बना लोगे तो किसी को भी कोई आपत्ति नहीं होगी।"

वैश्रवण ने अपने पिता के आदेश का पालन किया। वह कई हज़ार नैरृतों को साथ लेकर लंका पहुँचा और उस नगरी को अपना आवास बनाकर वहाँ राज्य करने लगा। वह कभी-कभी पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अपने माता-पिता के दर्शन कर आया करता था।

अगस्त्य मुनि से यह वृत्तान्त सुनकर श्रीरामचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंनें जिज्ञासा भरी दृष्टि से अगस्त्य की तरफ़ देखा और फिर पूछा–"महामुनि, मैंने तो ऐसा सुना है कि राक्षस पुलस्त्य-वंशी है। लेकिन आप तो कह रहे हैं कि राक्षस उसके पहले भी विद्यमान थे। कृपया यह बताइये कि उन राक्षसों का मूल पुरुष कौन है?"

अगस्त्य मुनि ने श्रीराम की जिज्ञासा के उत्तर में अपने कथा-प्रसंग को मोड़ देते हुए कहा :

कमलयोनि ब्रह्मा ने जल की सृष्टि कर उसकी रक्षा के लिए कुछ प्राणियों की सृष्टि की। वे प्राणी भूख-प्यास से व्याकुल

हो ब्रह्मा से पूछ बैठे–"बताइये, हमें क्या करना है?" ब्रह्मा ने विनोद में कहा–"तुम लोग इस जल की रक्षा करने का दायित्व लो!" उन प्राणियों में से कुछ ने तो रक्षा करने का वचन दिया और कुछ ने जक्षण अर्थात् भक्षण करने के लिए कहा। जिन्होंने रक्षा का आश्वासन दिया था, वे राक्षस कहलाये और जिन्होंने जक्षण की बात कही थी, वे यक्ष कहलाये।

राक्षसों में हेति और प्रहेति नाम के दो भाई थे। प्रहेति तपस्या करने चला गया, किंतु हेति ने विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। उसने पत्नी की खोज की और अन्त में यम की बहन भया के साथ विवाह कर लिया। भया अत्यन्त भयंकर थी।

कुछ समय बाद हेति के यहाँ विद्युत्केश नाम का एक पुत्र हुआ। वह सूर्य के समान तेजस्वी था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसके पिता ने उसका विवाह सन्ध्या नाम की एक स्त्री की बेटी सालकंटक से कर दिया। सालकंटक अपने पति विद्युत्केश के साथ सुखपूर्वक रहने लगी। कुछ काल बाद उसने मंदर पर्वत के प्रदेश में एक पुत्र को जन्म दिया। सालकंटक को पुत्र से कहीं अधिक पति के साथ विहार करने में रुचि थी, इसलिए वह पुत्र को वहीं छोड़ अपने पति के साथ भ्रमण के लिए चली गयी।

शिशु अपने मुँह में उंगलियाँ डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उस समय पार्वती और परमेश्वर वृषभ पर बैठकर आकाश मार्ग से जा रहे थे। उन्होंने मंदर पर्वत पर उस शिशु का रुदन सुना तो उन्हें उस पर दया आ गयी। वे नीचे उतरे। भगवान शिव ने पार्वती को सन्तुष्ट करने के लिए उस शिशु को चिरंजीवन और आसमान में उड़नेवाला एक नगर प्रदान किया। पार्वती ने भी उस शिशु को आशीर्वचन और वर दिये।

वह शिशु सुकेशु नाम से बड़ा हुआ। शिव-पार्वती से प्राप्त वरदानों के कारण सुकेशु नाम का यह राक्षस आकाशचारी नगर में विहार करता हुआ इन्द्र के समान शक्तिशाली हो गया।

ग्रामणि नाम के एक गन्धर्व ने जब यह सुना कि सुकेशु न केवल वरदान-प्राप्त है, बल्कि धर्मात्मा भी है तो उसने अपनी अद्भुत सुन्दर पुत्री देववती का विवाह सुकेशु के साथ कर दिया। देववती सुकेशु जैसे पति को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

देववती से सुकेशु के माल्यवन्त, सुमाली और माली नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनों पुत्र तीन अग्नियों की भाँति महा शक्तिशाली, निर्भय और भयंकर थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिता सुकेशु को शिव ने वर दिया था तो वे भी मेरु पर्वत पर पहुँचे और कठिन व्रतों का आचरण करते हुए तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से तीनों लोक हिल उठे। ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के साथ वहाँ आये और बोले–"तुम्हारी तपस्या पर हम प्रसन्न हैं। वर माँगो!"

"भगवन, यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें यह वर दीजिये–किसी के भी हाथ से हमारी पराजय न हो, हमारे हाथों से समस्त शत्रुओं का संहार हो और हमें सुखमय जीवन के साथ दीर्घायु प्राप्त हो!" ब्रह्मा ने तीनों को उनके इच्छित वर प्रदान किये।

इन वरों को प्राप्त करने के बाद ये तीनों राक्षस त्रिलोकों में आतंक मचाने लगे। सब त्रस्त हो उठे। देव, ऋषि, सिद्ध, मानव सब का जीवन नरक-तुल्य हो गया। कोई रक्षक न रहा।

एक बार इन तीनों राक्षसों ने विश्वकर्मा को बुलाकर आदेश दिया–"तुम हिमालय, सुमेरु अथवा मंदराचल पर हमारे लिए कैलास की समता करनेवाला एक नगर बनाकर दो। हमने सुना है कि समस्त देवनगरों और भवनों के निर्माता तुम्ही हो!"

विश्वकर्मा ने कहा—"दक्षिणी समुद्र-तट पर त्रिकूट तथा सुवेल नाम के दो पर्वत हैं। त्रिकूट पर्वत के शिखर के बीच मैंने इन्द्र की कामना से लंका नाम की एक नगरी का निर्माण किया है। वह नगरी स्वर्ग के समकक्ष है। उसमें सोने के प्राकार और वैदूर्य के तोरण हैं। तुम लोग अपनी राक्षस जाति के साथ वहाँ बस जाओ। तुम्हें इस बात से रोकने वाला कोई भी नहीं है।"

विश्वकर्मा के मुँह से लंका नगरी का वर्णन सुनकर तीनों राक्षस बहुत प्रसन्न हुए। वे सहस्रों परिवारों को लेकर लंका पहुँच गये और उस नगर की शोभा निरखने लगे। उसी समय नर्मदा नाम की एक गन्धर्व स्त्री अपनी तीन रूपवती कन्याओं के साथ वहाँ आयी और उसने तीनों राक्षस भाइयों के साथ उनका विवाह कर दिया।

ज्येष्ठ भाई माल्यवन्त की पत्नी का नाम सुन्दरी था। सुन्दरी के गर्भ से वज्रमुष्ठि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुपृघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त नाम से सात पुत्र तथा अनला नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ।

सुमाली की अत्यन्त प्रिय पत्नी केतुमती के गर्भ से प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालकर्मक, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्व, संह्लादी, प्रघन और भासकर्ण नाम के दस पुत्र तथा पुष्पोत्कटा, कैकसी, शुचिस्मिता और कुम्भीनसी नाम की चार पुत्रियाँ हुईं।

माली की पत्नी के गर्भ से अनिल, अनल, हर और संपाती नाम के चार पुत्रों का जन्म हुआ। ये चारों बड़े होने पर विभीषण के मंत्री बने।

इस प्रकार ये तीनों राक्षस अपने बच्चों तथा परिवारों के साथ लंका में निवास करते हुए इन्द्रादि देवताओं, ऋषियों, नागों और दानवों को भी सताते हुए अहंकार के साथ इस तरह त्रिभुवन में विचरण करने लगे, मानों उनका संहारक कोई न हो। उन्हें मौत का डर नहीं था, इसलिए वे यज्ञों का विध्वंस करते और वरदान के गर्व से प्रमत्त होकर जीवन बिताते।

मंगलनाथ

मंगलनाथ ने अपना सारा जीवन तरह-तरह के अपराधों में बिताया था। जब वह मरा, तब यमराज के दूत उसे नरक के द्वार पर छोड़कर चले गये। वहाँ एक छोटे से सिंहासननुमा आसन पर नरक का द्वारपाल बैठा था।

मंगलनाथ ने यहाँ भी झूठ और मक्कारी का आश्रय लिया और द्वारपाल से बोला— "यमदूत यह कहकर मुझे यहाँ ले आये कि मेरी आयु समाप्त हो गयी है। वास्तव में, बात यह है कि मेरे ही नाम वाले चार आदमी मेरे गाँव में हैं। मुझे तो लगता है कि ये मुझे किसी और आदमी के बदले ले आये हैं। मैं तो रुद्रवंशी हूँ। मेरे पिता का नाम भीमशंकर है। आप ये विवरण एक बार चित्रगुप्त की बही में देख आयें।"

मंगलनाथ की बातें सुनकर नरक के द्वारपाल को यह चिन्ता हुई कि कहीं निरपराध व्यक्ति दंड का भागी न बन जाये। वह अपने आसन से उठकर अन्दर चला गया। मंगलनाथ ने द्वारपाल के आसन को देखा तो उसे सिर पर उठा लिया और सोचने लगा—"अरे, यह तो कोई बहुमूल्य वस्तु मालूम होती है। सब की आँख बचाकर इसके ख़रीददार की खोज करनी चाहिए।" यह निश्चय कर मंगलनाथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

तभी चित्रगुप्त वहाँ पर आ पहुँचा। पहले तो उसने द्वारपाल की मदद से मंगलनाथ को बन्दी बनाया, फिर बोला—"तुम्हारे गाँव में चाहे जितने भी मंगलनाथ क्यों न हों पर सब से बड़े पापी मंगलनाथ तुम्हीं हो।"
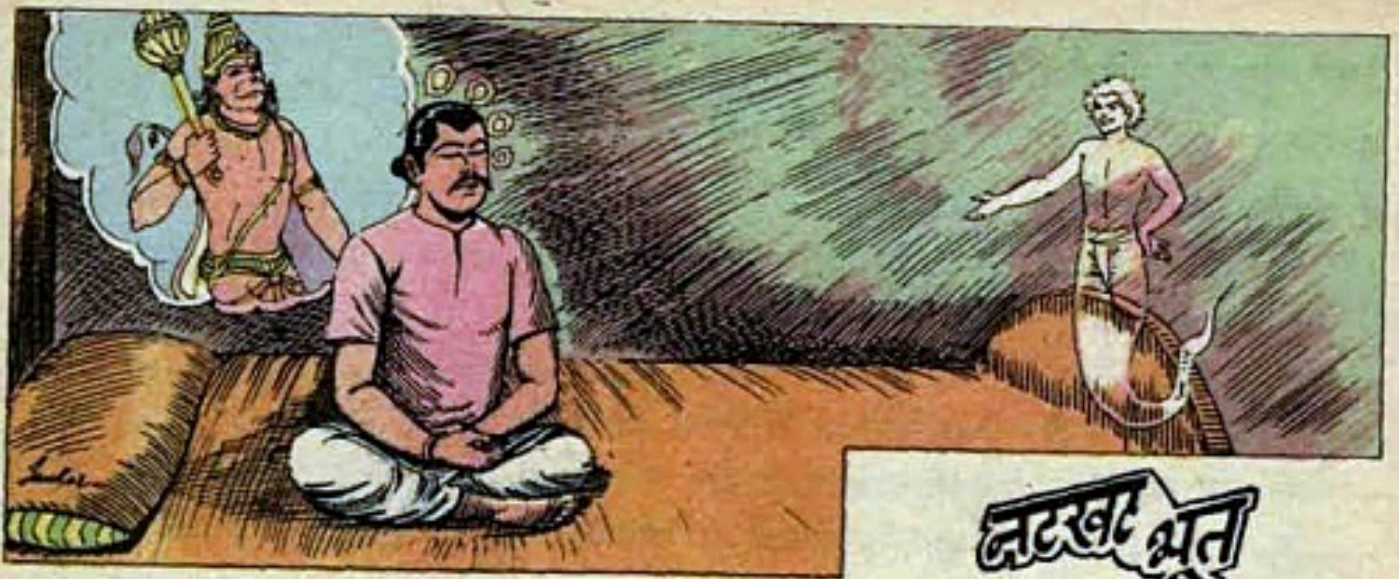
गंगानगर में जयनाथ एक संपन्न जमींदार था। वह एक रात अपने कमरे में सो रहा था, तब अटारी पर कोई आहट हुई। उसने आँखें मलकर ऊपर-नीचे, सब तरफ़ देखा, पर उसे कोई नहीं दिखाई दिया। पर अटारी पर फिर से आहट हुई।

जयनाथ ने गुस्से में आकर पूछा–"कौन है?" तभी एक भूत अटारी पर से कूदकर उसके सामने आ खड़ा हुआ।

भूत को देखकर जयनाथ कांप उठा और बोला–"तुम कौन हो?"

भूत खिलखिला कर हंस पड़ा और बोला–"मैं भूत हूँ। मैं अपने घर में शरारत कर रहा था तो मेरी माँ ने मुझे कहीं और जाकर खेलने को कहा। मुझे इस घर की अटारी खेलने के लिए बहुत अच्छी लगी।" जयनाथ ने तुरन्त हनुमान का नाम जपना शुरू कर दिया और–"जय आंजनेय! प्रसन्न आंजनेय!" बोलने लगा।

भूत हँसकर बोला–"मरने से पहले मेरी बिरादरी के सब लोग आंजनेय के ही भक्त रहे हैं, इसलिए तुम्हारे इस जाप का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

जयनाथ की समझ में नहीं आया कि क्या करें। वह थोड़ी देर सोचकर बोला–"पड़ोस के मकान की अटारी यहाँ से भी बड़ी है। तुम वहीं चले जाओ!"

"मैं तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ूंगा। तुम चुपचाप सो जाओ। मैं खेलता रहूंगा।" भूत बोला।

"अच्छी बात है! जैसी तुम्हारी मर्ज़ी!" यह कहकर जयनाथ फिर लेट गया। भूत उछलकर फिर अटारी पर जा पहुँचा। उसकी उछल-कूद से फिर आवाज़ें होने लगीं। जयनाथ की नींद हराम हो गयी।

विनोद मिश्र

उसने भूत को अनेक तरह से समझाया कि शोर न मचाये, पर उसने जयनाथ की एक न सुनी।

जयनाथ की उम्र लगभग पचास वर्ष की थी। दो वर्ष पहले उसकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। उसका एक ही पुत्र था–रघुपति। रघुपति की पत्नी जानकी अत्यन्त सुशील थी और अपने ससुर को अपने पिता से भी अधिक मानती थी।

भूत के जाते ही जयनाथ ने अपने पुत्र एवं पुत्रवधू जानकी को बुलाकर रात का अनुभव सुनाया।

रघुपति ने समझाकर कहा–"पिताजी, भूत नहीं होते। आप भ्रम में पड़ गये हैं।"

"पिताजी, हम आज रात को आप के कमरे में सोयेंगे, आप हमारे कमरे में सो जाइये!" बहू जानकी बोली।

जयनाथ ने बहू के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस रात जब उसकी नींद लगी, तभी उस कमरे में आहट सी हुई। जयनाथ चौंककर उठ बैठा।

सामने भूत खड़ा था। वह जयनाथ की तरफ़ क्रोधभरी नज़र डालकर बोला–"मैंने ही आहट करके तुम्हें जगाया है।"

"किसलिए?" जयनाथ ने खीझकर पूछा।

"अटारी के पास वाले कमरे में तुम्हें ही सोना होगा, तभी मुझे खेलने में मज़ा आयेगा। तुम अभी जाकर अपने लोगों को नींद से उठा दो। तुम लोग इसी समय अपने कमरे बदलो!" भूत ने आदेश के स्वर में कहा।

"मैं तो यहीं सोऊँगा!" जयनाथ ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तब तो मैं इस गाँव का सारा कूड़ा-करकट लाकर तुम्हारे घर में फेंक दूँगा! जो मैं कह रहा हूँ, वैसा करो!" भूत बोला।

जयनाथ डर गया और उसने भूत की बात मान ली। बेटा-बहू इसे पिता की

सनक समझकर अपने कमरे में आ गये। उस रात भी भूत अटारी पर भारी आवाज़ें करके खेलता रहा। जयनाथ रात भर जागता रहा।

दूसरे दिन सवेरे भूत रात को फिर आने की सूचना देकर वहाँ से चला गया।

जयनाथ ने बेटे-बहू से रात का सारा किस्सा कह सुनाया।

"पिताजी, यह सब आप का भ्रम है।" रघुपति बोला।

"पिताजी, अगर भूत कूड़ा-करकट फेंकने की धमकी दे रहा था तो आप डर क्यों गये? मैं साफ़ कर देती। आप उस भूत से न डरियेगा और हमारे कमरे में ही सोइयेगा।" बहू जानकी ने कहा।

जयनाथ ने जानकी की बात मान ली। उस रात भी भूत आया और जयनाथ को तरह-तरह से धमकाने लगा। उसने कोई परवाह नहीं की। भूत ने सारे घर में कूड़ा करकट भरने की धमकी दी तो जयनाथ ने कहा—"कोई बात नहीं, मेरी बहू साफ़ कर देगी। तू भाग यहाँ से!"

यह सुनकर भूत का पारा चढ़ गया। भूत ने किसी तंत्र का प्रयोग करके जयनाथ को गूंगा बना दिया और उसे दूसरे कमरे में बंद कर दिया। फिर जयनाथ का रूप धारण कर उसने रघुपति के कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी।

रघुपति उनींदी आँखों में दरवाजे के पास पहुँचा और किवाड़ खोल कर बोला—
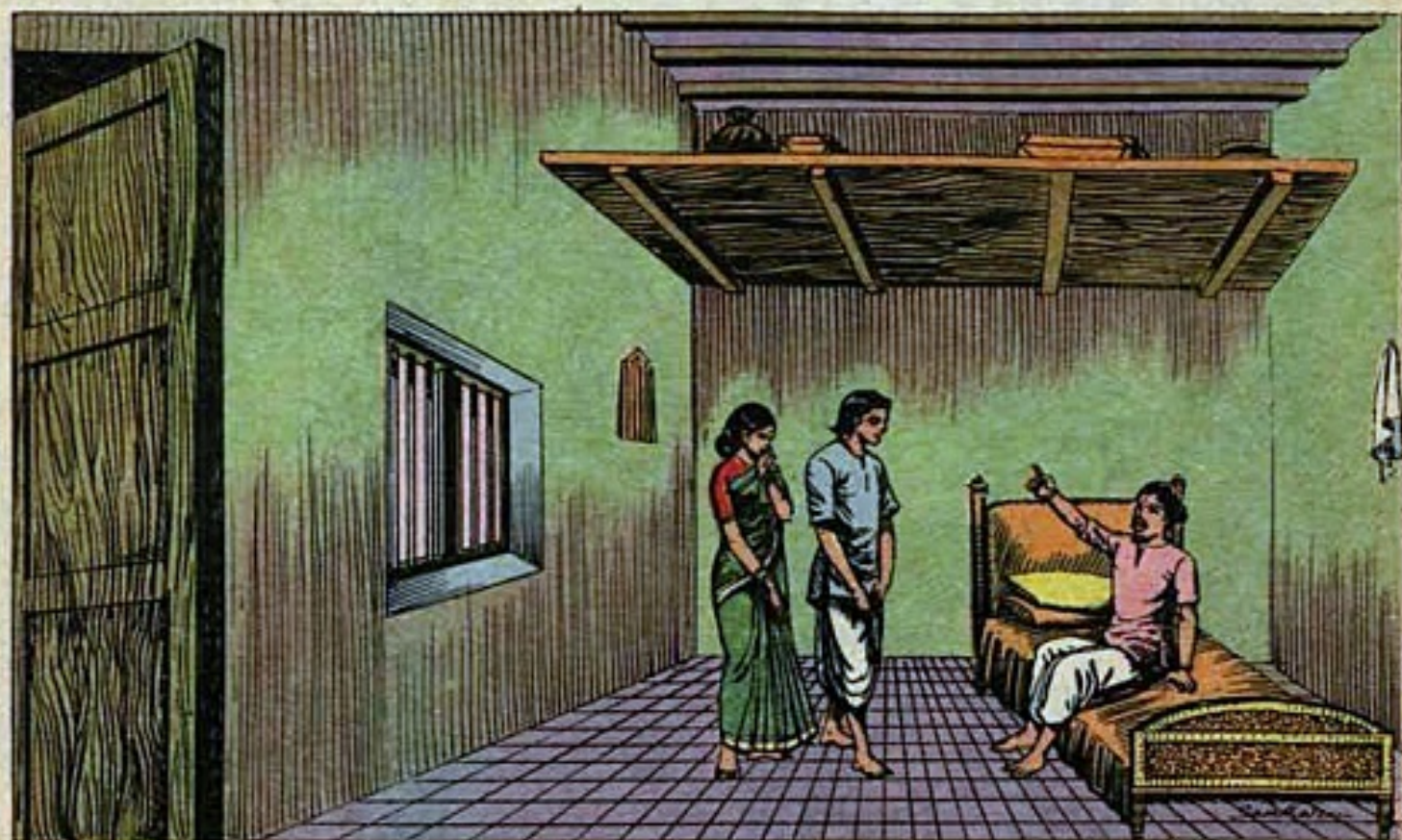
"पिताजी क्या हुआ? क्या भूत ने आप को फिर से डराया है?"

"नहीं, नहीं, बेटा! यह सब मेरा भ्रम है। मुझे इस अटारी वाले कमरे में ही नींद आती है। तुम्हें कष्ट तो होगा!" जयनाथ के रूप में खड़ा भूत बोला।

जयनाथ के बेटा-बहू दूसरे कमरे में चले गये। तब भूत जयनाथ को अटारी वाले कमरे में ले गया और शोर मचाकर खेलने लगा। जयनाथ ने पूछा–"तुम मुझे क्यों तंग करते हो? मुझे छोड़कर भागने के लिए तुम्हारी क्या शर्त है?"

"मैंने पहले ही तुम्हें बता दिया था कि मैं किसी भी तरह से तुम्हें नुक़सान नहीं पहुँचाऊँगा। मुझे इस अटारी पर खेलने दो और तुम इसी कमरे में सोओ। बस, यही मेरी शर्त है।" भूत ने कहा।

"मैं अभी अपने बहू-बेटे को बुला लाता हूँ। वे तुम्हें अच्छा सबक़ सिखायेंगे।" जयनाथ ने गुस्से से कहा।

"तुम्हारे बेटे-बहू अब तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं करेंगे।" यह कहकर भूत ने वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जो जयनाथ का वेश धरकर उसने किया था।

जयनाथ का सिर चकरा गया। उस रात भी वह नहीं सो पाया। अगले दिन सुबह भूत हमेशा की तरह रात को आने को कहकर चला गया। जयनाथ ने भूत से पिंड छुड़ाने के लिए कुछ न कुछ करने
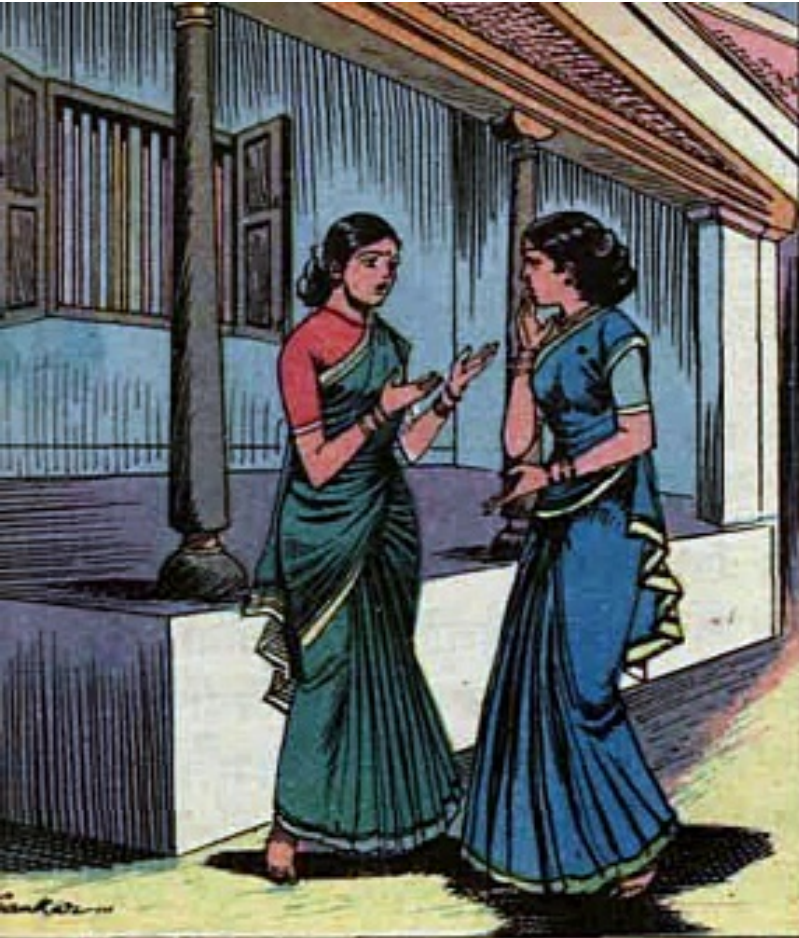
का निश्चय कर लिया। उसी दिन पड़ोसी गाँव शादपुर से उसे खबर मिली कि बहन के बेटे की शादी है। पूरे परिवार को आने का निमंत्रण दिया गया था।

जयनाथ ने अपने घर की रखवाली के लिए एक किसान दम्पती को वहाँ रख दिया और स्वयं सपरिवार बहन के घर शादपुर चला गया। जयनाथ के परिवार को अप्रत्याशित रूप से वहाँ दो सप्ताह से अधिक रुकना पड़ गया।

गाँव से लौटने पर जयनाथ ने किसान से पूछा—"तुम्हें किसी तरह की परेशानी तो नहीं हुई? रात को नींद ठीक से तो आती थी न?"

जयनाथ की बात सुनकर किसान ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"बाबूजी, आप यह क्या पूछ रहे हैं? मैं अटारी पर सोता था। वहाँ बड़ी शांति है। मैं गहरी नींद सोता था।"

जयनाथ ने इसके बाद किसान से कोई सवाल नहीं किया। उस रात भूत भी वहाँ नहीं आया।

इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। पड़ोस की प्रेमा ने जानकी से कहा—"मेरे ससुर जी शिकायत करते हैं कि हमारी अटारी पर कोई भूत रहने लगा है। वह हर रात उनकी नींद में खलल पैदा करता है। वह भूत हम लोगों को तो दिखाई नहीं देता। मुझे तो ऐसा लगता है कि उन्हें भ्रम हो गया है।"

जानकी विस्मित होकर बोली—"बहन प्रेमा, ऐसा ही अनुभव मेरे ससुरजी को भी हुआ था। भाग्य से इस समय वे सब भ्रम-मुक्त हैं। मैं नहीं जानती कि इस भ्रम को दूर करने के लिए उन्होंने क्या किया है? तुम अपने ससुर जी से कहो कि वे इस सम्बन्ध में मेरे ससुर जी से बात करें।"

पड़ोसी शंभुनाथ ने जयनाथ से मुलाक़ात की। जयनाथ को इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसने जिस भूत को देखा

था, उसे एक और आदमी ने भी देखा है। वह शंभुनाथ से बोला–"दोस्त, हम दोनों के अनुभव एक जैसे हैं। आज रात मैं तुम्हारे घर आकर स्वयं भी उस भूत से मिलना चाहूँगा।"

उस रात जयनाथ शंभुनाथ के घर पहुँचा। रात के दूसरे प्रहर भूत वहाँ आ पहुँचा और आवाज करने लगा। जयनाथ और भूत दोनों एक दूसरे को पहचान गये।

भूत बोला–"तुमने जो कहा था कि पड़ोसी घर की अटारी और भी बड़ी है, वह सच है। तुम्हारे घर की अपेक्षा अब मुझे यहीं खेलना अच्छा लगता है।"

"मैंने तुम्हें यह बात बहुत पहले ही बतायी थी, उस वक्त तुमने मेरा पिंड क्यों नहीं छोड़ा?" जयनाथ ने पूछा।

"अटारी पर मेरे खेलते समय मुझे एक ऐसा आदमी चाहिए, जो बराबर खीजता रहे। जब तक तुम वहाँ थे, मुझे बड़ा अच्छा लगा। इसके बाद कोई घोड़े बेचकर सोनेवाला आदमी वहाँ आ गया। बहुत शोर मचाने पर भी वह आँख नहीं खोलता था। मैं तंग आकर तुम्हारे बताये इस पड़ोस के घर में आ गया। यहाँ का मालिक तुमसे भी अधिक खीजनेवाला है, इसलिए यहाँ मुझे बहुत अच्छा लगता है।" भूत बोला।

जयनाथ और शंभुनाथ ने वास्तविक रहस्य समझ लिया। यह सब कच्ची नींद का फल है। गहरी नींद सोना है तो कड़ी मेहनत करनी होगी। पक्की नींदवालों से भूत का मनोरंजन नहीं होता। इन दोनों ने बहुत समय से शारीरिक श्रम करना त्याग दिया है। पेट भर खाकर आराम करते रहते हैं। ऐसे लोगों को नींद नहीं आती, थोड़ी सी आहट होते ही तुरन्त जाग उठते हैं।

यह सत्य समझ लेने के बाद जयनाथ और शंभुनाथ बागबानी के काम में अपना समय और शक्ति देने लगे। रात को वे गहरी नींद सोते। इसके बाद भूत ने उन्हें कभी नहीं सताया।

दुहरी जुबान का कोतवाल

गोलकोंडा के निकट आवारागर्दी करते, घबराए हुए एक युवक को वीरासिंह नाम के एक सिपाही ने पकड़ लिया और पूछा—"इधर क्या कर रहा है? कौन है तू?"

"मैं आप की बोली नहीं समझता, बाबूजी!" उस युवक ने हाथ जोड़कर कहा।

उस इलाके का कोतवाल आस-पास की सभी भाषाओं और बोलियों को समझ लेता था। वीरासिंह उस युवक को कोतवाल के पास ले गया और बोला—"हुजुर, मैंने इसे संदेहास्पद स्थिति में पकड़ा है। मुझे तो यह हमीदपुर के जौहरी का हत्यारा लगता है, जिसकी आजकल खोज चल रही है। आप इसके मुँह से सच बात निकलवा लीजिये।"

कोतवाल ने अपनी तलवार की नोक युवक की छाती पर टिका दी और सच बात बताने के लिए कहा। उस युवक ने स्वीकार कर लिया कि उसी ने जौहरी की हत्या की है।

यह बात कोतवाल ने सिपाही वीरासिंह को बतायी। वीरासिंह ने कोतवाल से निवेदन किया—"हुजूर, आप इस हत्यारे से यह और पूछ लें कि इसने जौहरी के यहाँ से जो बीस हजार सोने की गिन्नियाँ चुरायी थीं, उनका इसने क्या किया?"

कोतवाल के पूछने पर युवक ने बताया कि एक पहाड़ी गुफ़ा में सारा धन छिपा रखा है। अन्त मे कहा—"हुजूर आप यह धन ले लीजिये, लेकिन मुझे मुक्त कर दीजिये।"

वीरासिंह ने कोतवाल से जानना चाहा कि यह युवक क्या कहता है। कोतवाल कुछ क्षणों के लिए झिझका, फिर बोला—"यह कहता है कि इसने जौहरी को मारकर जो सोने की गिन्नियाँ हड़पी थीं, उन्हें इसने खर्च कर डाला है। भले ही इसकी जान भी क्यों न ले ली जाये, इसे परवाह नहीं है। इस हठी आदमी को छोड़ देना चाहिए।"

कोतवाल की बात समाप्त होते ही युवक ने अपनी पोशाक में से अपना पहचान-पत्र निकाल कर कोतवाल को दिखाया। वह युवक छद्मवेश में नवाब का प्रमुख सलाहकार सलीमखाँ था।

"तुम्हारी बदनीयत और भ्रस्टाचार सम्बन्धी कई शिकायतें नवाब तक पहुँची थीं। नवाब के हुक्म से सत्य का पता लगाने के लिए मैंने यह स्वाँग रचा था।" यह कहकर सलीमखाँ कोतवाल को पकड़कर दुर्ग की तरफ़ चल पड़ा।

वराहमिहिर

स्वर्णदेश के महाराज भरत अत्यन्त न्यायप्रिय थे। वे छद्मवेश धारण कर राज्य का भ्रमण करते अपनी प्रजा के सुख-दुख की जानकारी स्वयं हासिल करते थे।

एक बार महाराजा भरत अपने मंत्री प्रद्युम्न को लेकर भ्रमण के लिए निकले। दोनों ने व्यापारियों का छद्मवेश धारण कर रखा था। वे घूमते हुए दूर के एक नगर में पहुँचे। वहाँ एक मकान के सामने उन्हें बाईस वर्ष का एक युवक खड़ा दिखाई दिया। आयु के अनुरूप उसकी सुगठित देह थी और क़द ऊँचा था।

भूतबलि देने के लिए वह युवक उसी समय मकान के बाहर आकर खड़ा हुआ था। राजा और मंत्री ने उसके पास जाकर उसका पूरा परिचय प्राप्त किया।

मिहिर नाम के उस युवक ने अपने अतिथियों का स्वागत-सत्कार किया। वार्तालाप के बीच यह ज्ञात हुआ कि वह युवक ज्योति-विद्या का जानकार है।

राजा भरत ने मिहिर के ज्योतिष-ज्ञान की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने मिहिर से पूछा—"महानुभाव, हम दोनों व्यापारी हैं, आप हमें यह बताने की कृपा करें कि हमारा संकल्प पूरा होगा अथवा नही? हमें कोई शुभ मुहूर्त भी बतायें।"

मिहिर न उत्तर दिया—"महानुभावों, आप क्षत्रिय हैं, भले ही आपने व्यापारियों जैसा वेश धारण कर रखा है। मुझे तो ऐसा लगता है कि आप को देश के विशिष्टतम व्यक्तियों में से होना चाहिए, संभवतः राजा और मंत्री।"

राजा और प्रद्युम्न के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजा मिहिर को राजधानी ले गये और राजसभा में ऊँचा पद दिया। कई वर्ष बीत गये। राजा भरत के

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। सात दिन उत्सव मनाया गया। राज्य के सभी बड़े-बड़े ज्योतिषियों को बालक की जन्म कुंडली बनाने का काम सौंपा गया। सभी ज्योतिषियों ने अलग-अलग और संयुक्त रूप से ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का अनुशीलन करके अपनी संपूर्ण प्रतिभा लगाकर बालक की जन्म कुंडली बनायी।

जन्म कुंडलियाँ बन जाने के पश्चात् राजा ने राजसभा बुलायी। उस सभा में प्रायः सभी ज्योतिषियों ने यह मत व्यक्त किया–"महाराज, राजकुमार की जन्म कुंडली अद्भुत है। पर बीस की आयु में राजकुमार के प्राणों के लिए खतरा है। पर उसे बड़ी आसानी से दूर कर दिया जायेगा। इसलिए चिंता की कोई बात नहीं है।"

लेकिन मिहिर सब से अलग चुप बैठा था। जब राजा ने उसका मत जानने की इच्छा प्रकट की तो वह अन्य ज्योतिषियों से अपना मत-भेद प्रकट कर दृढ़ स्वर में बोला–"महाराज, राजकुमार बीस वर्ष की आयु के बाद की पहली पूर्णिमा को सायं साढ़े पाँच बजे जंगली सुअर के प्रहार से निश्चय ही काल का ग्रास बनेगा। इस होनी को कोई टाल नहीं सकता।"

राजकुमार, जिसे अभिषेक नाम दिया था, धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। बाल्यावस्था निकली, किशोरावस्था आयी। राजा भरत ज्योतिषियों की भविष्यवाणी का स्मरण करके व्याकुल रहने लगे।

राजा को मिहिर पर अटूट विश्वास था। वे जानते थे कि पूर्व का सूर्य पश्चिम में उग सकता है, लेकिन मिहिर की वाणी झूठी नहीं हो सकती। राजा ने राजकुमार अभिषेक के बारे में पूरी तरह सावधान रहने का निश्चय कर लिया।

प्रारब्ध को कौन मनुष्य बदल सकता है। राजा यह जानते हुए भी राजकुमार को जंगली सुअर के खतरे से बचाने का हर संभव प्रयत्न करने लगे। उन्होंने

राजधानी से कुछ दूर एक सात मंजिल के भवन का निर्माण कराया। उसमें सुरक्षा की ऐसी व्यवस्थाएँ कर दीं कि बाहर से एक चींटी का प्रवेश भी न हो सके।

राजा ने राजकुमार अभिषेक के लिए शिक्षा और मनोरंजन के सारे प्रबन्ध राजभवन में ही करवा दिये। इस बात का आदेश था कि राजकुमार वन-विहार के लिए न जाये।

समय बीतता गया। राजकुमार का बीसवाँ जन्मदिन अनेक माँगलिक कार्यक्रमों के साथ मनाया गया। संकट की निर्धारित तिथि को केवल दो दिन शेष थे। राजा ने प्रहरियों, राजकुमार के संरक्षकों को और अधिक सावधान रहने का निर्देश दिया।

पूर्णिमा आ गयी। अपरान्ह के तीन बज गये। राजा ने पंडितों की सभा बुला रखी थी। वेदपाठ चल रहा था। गुप्तचर बराबर सूचना ला रहे थे।

मिहिर के प्रशंसक सभासदों को यह आशंका होने लगी कि मिहिर ने संभवत: ज्योतिष विद्या से सम्बन्धित गणित आंकड़ों में कोई भूल कर दी है। अगर ऐसा हुआ तो महाराज मिहिर पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जायेंगे। इतने में पाँच बज गये। राजा सारे पंडित समाज और सभासदों के साथ राजकुमार को देखने के लिए चल पड़े।

सेवक मार्ग में भी राजा के पास आते और उन्हें सूचना देते कि राजकुमार सुरक्षित हैं। सब आश्चर्य से मिहिर की ओर देखते।
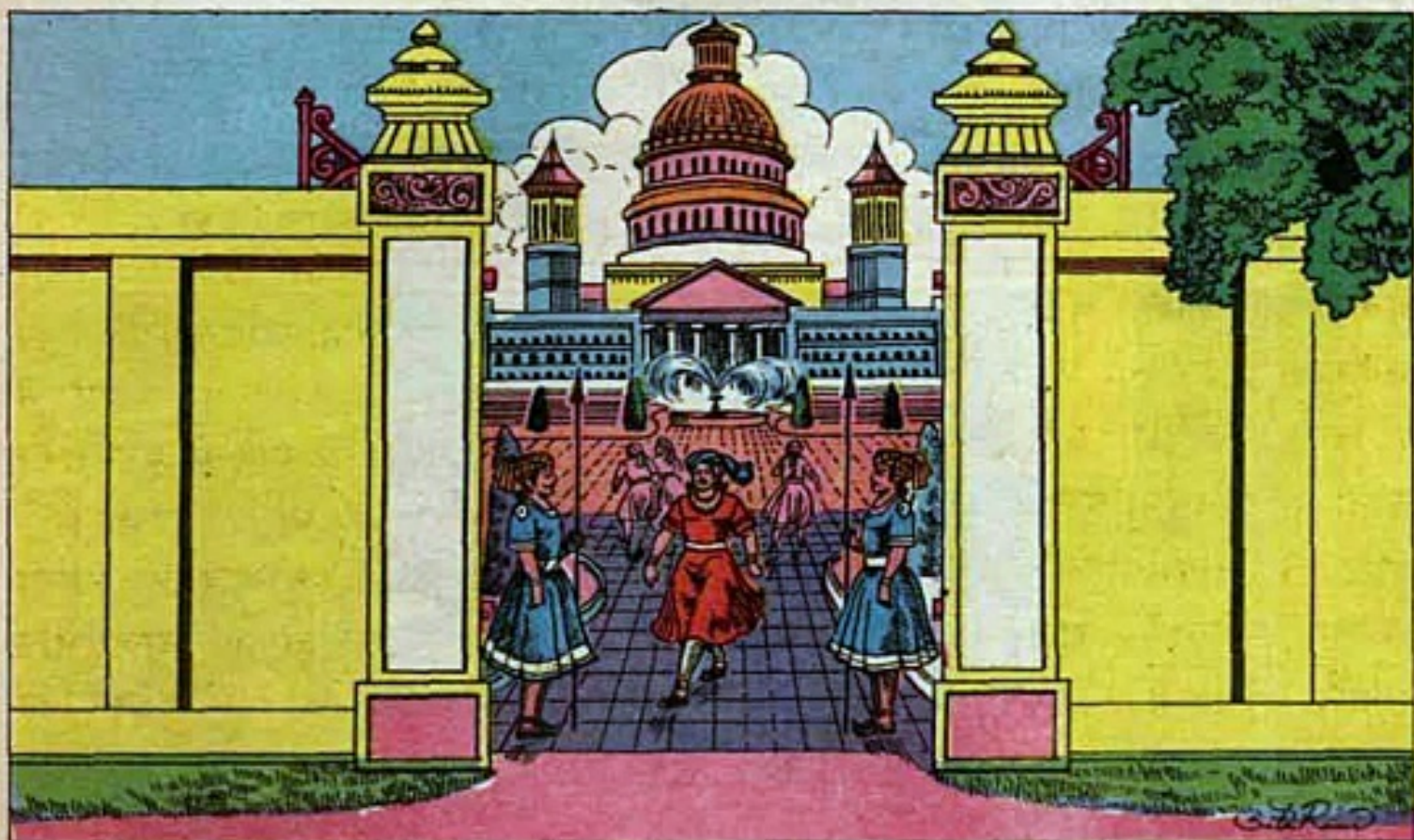
मिहिर बड़े अडिग भाव से आगे बढ़ रहा था। वह जानता था कि ज्योतिष की उसकी गणना कभी गलत नहीं हो सकती। इसके बाद सब लोगों ने उस सात मंज़िले भवन में प्रवेश किया। महाराजा भरत ने राजकुमार अभिषेक के बारे में पूछताछ की तो सेवकों ने बताया कि राजकुमार चौथी मंज़िल के कक्ष में हैं। सब चौथी मंज़िल पर पहुँचे। उस मंज़िल के सेवकों ने महाराज से बताया कि राजकुमार हवाखोरी के लिए आधा घंटा पहले अटारी पर गये हैं।

ठीक छह बजे थे। राजा ने राजकुमार की विपदा की घड़ी टली जान राहत की साँस ली और मिहिर की तरफ़ प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। मिहिर ने अपनी गणना की और दुखित स्वर में महाराजा से निवेदन किया–"महाराज, राजकुमार अभिषेक आधा घंटा पूर्व इस संसार को छोड़ चुके हैं।"

सब के हृदय आशंका से धड़कने लगे, सब ने ऊपरी मंज़िल पर पहुँचकर देखा, ताम्र की बनी एक अत्यन्त विशाल और भारी वराह मूर्ति के छाती पर गिर जाने के कारण राजकुमार एक पताका-स्तम्भ के नीचे ख़ून उगल कर मरे पड़े हैं। पुत्र-शोक के कारण राजा के मुँह से चीख निकल पड़ी। वे विलाप करने लगे।

"इस भवन का निर्माण करते समय शिल्पी ने वराह की यह मूर्ति पताका-स्तम्भ के साथ खड़ी की थी। संभवत: राजकुमार ने उसे कौतुहलवश खींच लिया था, उसके वजन के छाती पर गिर जाने के कारण राजकुमार की मृत्यु हो गयी। वराह मूर्ति हमारे कुलदेवता की मूर्ति है। हमारे कुलदेवता ने ही हमारे पुत्र को अपने अन्दर लीन कर लिया है। होनहार को कोई नहीं मेट सकता।" राजा ने स्वयं धैर्य रख सब को समझाया।

इसके बाद महाराजा भरत ने मिहिर को कंठ से लगा लिया। उन्होंने मिहिर को 'वराहमिहिर' की उपाधि प्रदान की और उसे उसकी सत्य विद्या के कारण सभा में सर्वोच्च पद प्रदान किया।
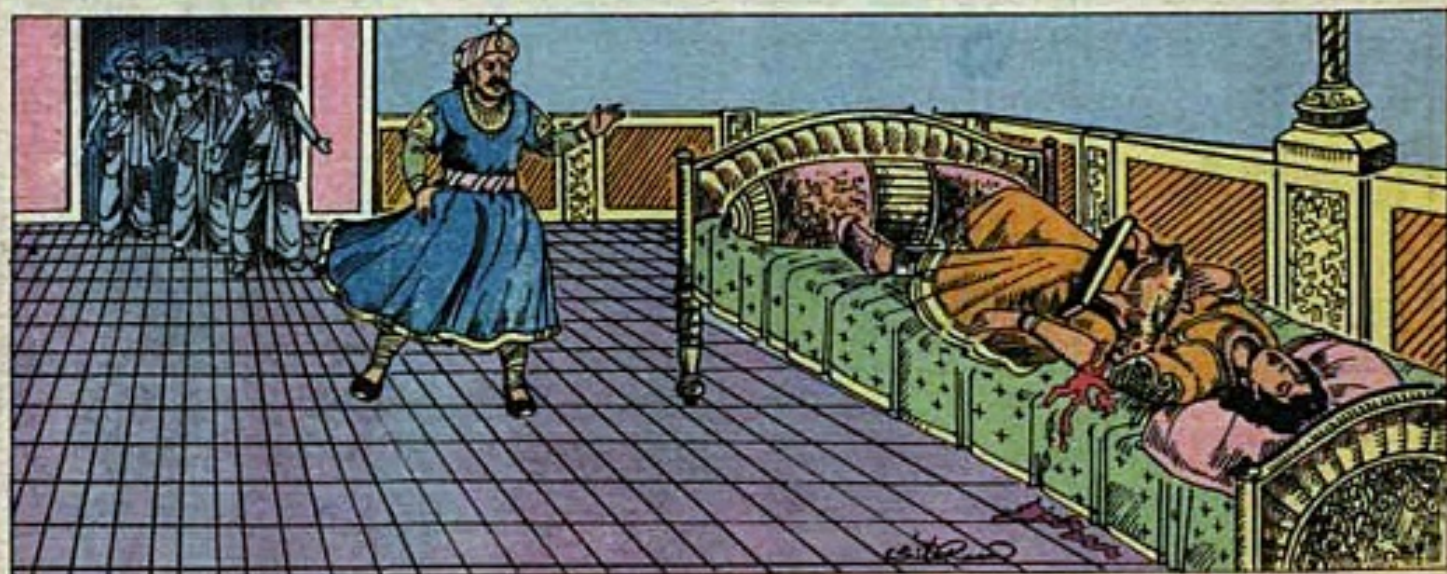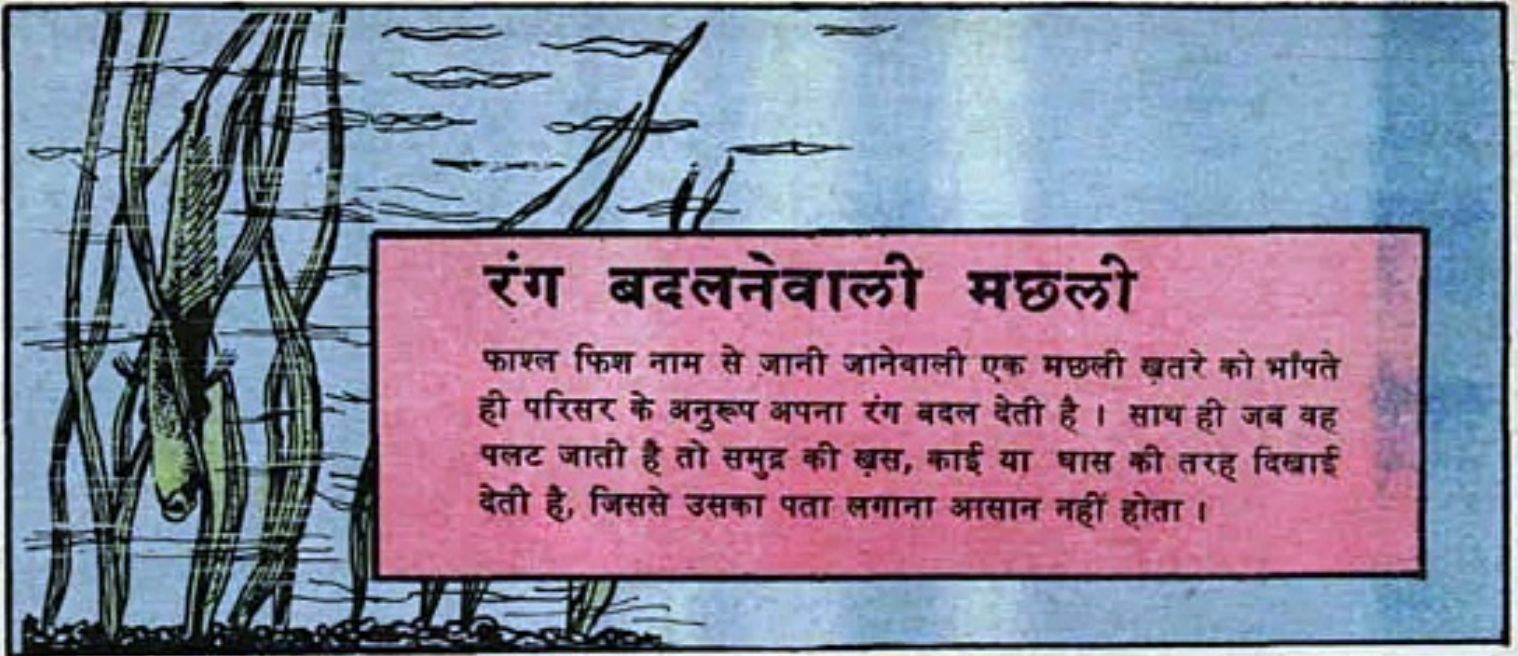
रंग बदलनेवाली मछली
फाश्ल फिश नाम से जानी जानेवाली एक मछली ख़तरे को भाँपते ही परिसर के अनुरूप अपना रंग बदल देती है। साथ ही जब वह पलट जाती है तो समुद्र की ख़स, काई या घास की तरह दिखाई देती है, जिससे उसका पता लगाना आसान नहीं होता।
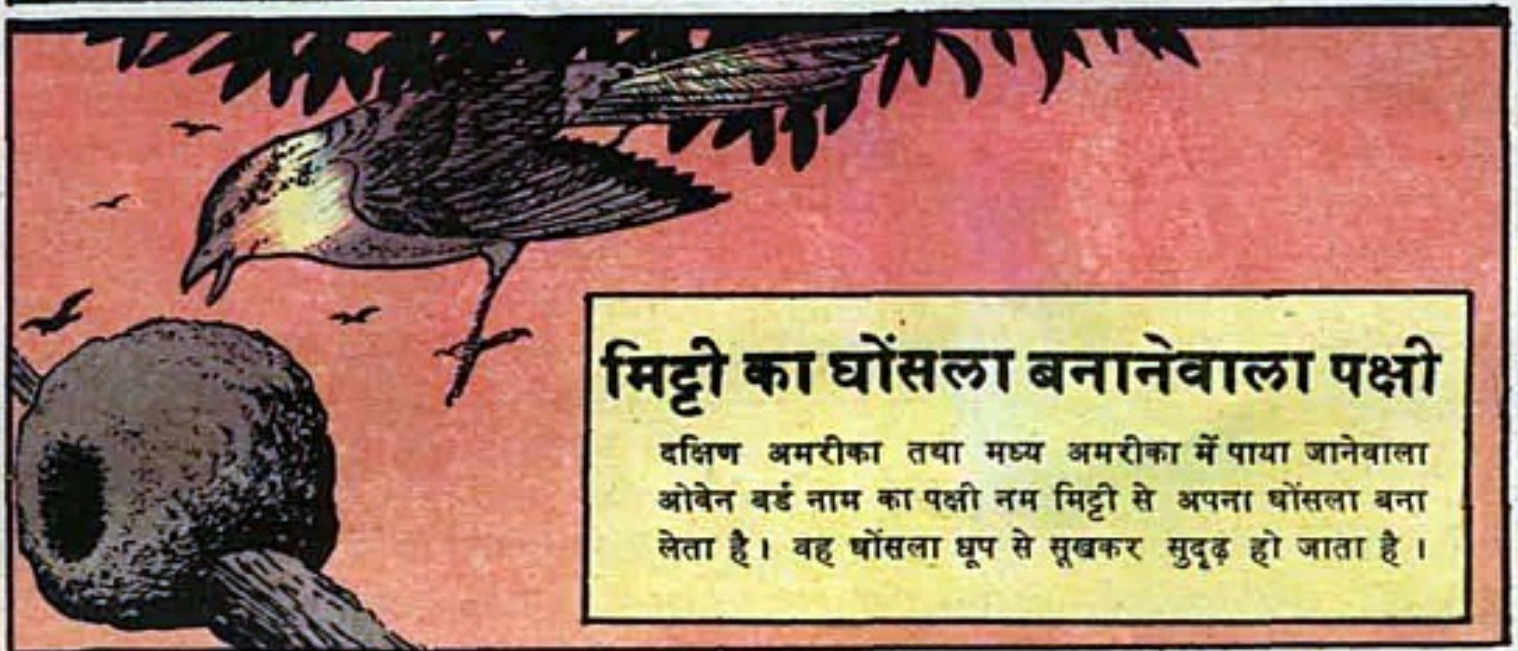
मिट्टी का घोंसला बनानेवाला पक्षी
दक्षिण अमरीका तथा मध्य अमरीका में पाया जानेवाला ओवेन बर्ड नाम का पक्षी नम मिट्टी से अपना घोंसला बना लेता है। वह घोंसला धूप से सूखकर सुदृढ़ हो जाता है।

पेड़ों पर मेंढक
विश्व भर में कुल मिलाकर लगभग ५०० प्रकार के मेंढक पेड़ों पर रेंग सकते हैं। इन मेंढकों को उंगलियों के पोर वाले भाग कुछ टेढ़े होते हैं, इसलिए ये तनों, टहनियों और पत्तों को भी बड़ी सरलता से पकड़ लेते हैं।

मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार !
सुपर
रिन
सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद
किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ नवम्बर १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Devidas Kasbekar

V. Rajamani

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ सितम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जुलाई के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : बात पर ध्यान !

द्वितीय फोटो : आहट पर कान !!

प्रेषिका : **कु. नवोदिता शर्मा,** १६, खजान्चियों का बास, पाली—मारवाड (राज.) ३०६४०१

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.